सुनील साहित्य सदन
ए-101, उत्तरी घोंडा, दिल्ली-11005
फ़ोन : 2262499 ❖ 2175472 ❖ 328

मनोरंजक बाल कहानियां

बलबीर त्यागी

मूल्य : एक सौ पचास रुपये

प्रकाशक : सुनील साहित्य सदन
ए-101, उत्तरी घोण्डा,
यमुना विहार रोड,
दिल्ली–110053 (भारत)

संस्करण : 2001

कलापक्ष : हरिपाल त्यागी

शब्द-संयोजक : कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज़
जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-2

मुद्रक : तरुण प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली–110032

MANORANJAK BAL KAHANIYAN
by Balvir Tyagi Price : Rs. 150.00

Published By : SUNIL SAHITYA SADAN
A-101, North Ghonda, Yamuna Vihar Road.
Delhi - 110053 (INDIA)
Tel. : (011) 2262499, 2175472, 3282733

अपना बयान

बच्चे समाज की धरोहर होते हैं। एक अच्छा समाज बनाने के लिए बच्चों को सुशील, सभ्य और अच्छे चालचलन की शिक्षा देना बहुत जरूरी होता है। यह शिक्षा उन्हें मिलती है अपनी प्रथम पाठशाला--घर से; और इस पाठशाला की सबसे अच्छी शिक्षिकाएं होती हैं दादी मां और नानी मां, जो बच्चों को अपनी सरल-सुबोध बोलचाल की भाषा में कहानियां सुना कर उन्हें मनोरंजन के साथ सदाचार की शिक्षा भी देती हैं।

आज जिस तेजी से हमारी संस्कृति की संयुक्त परिवार की श्रेष्ठ प्रणाली एवं नाते-रिश्तों की पवित्र गंगा का लोप रहा है, नयी पौध की शाला से शिक्षाप्रद कहानी-कथाएं सुनाने वाली दादी मां-नानी मां दूर होती जा रही हैं। ऐसी मारक स्थिति में नन्हे-मुन्नों को कौन सुनाएगा चरित्र-निर्माण के किस्से-कहानियां? क्या 'जैक एण्ड जिल' की 'राइम' रटवाने वाली नयी रोशनी की मम्मी या दफ्तर की फाइलों के जंगल में खोये रहने वाले पापा? किसके पास होगा इनको कहानी सुनाने का समय? ऐसी हालत में हमारा लोक कथा साहित्य दादी मां-नानी मां की उपेक्षित पीढ़ी के साथ गुम नहीं हो जाएगा क्या?

तब हमारी आने वाली पीढ़ियां गुमराह हो जाएंगी? उन्हें सही राह दिखाने के लिए एक बार फिर हमें अपने अच्छी शिक्षा देने वाले इस लोक कथा साहित्य की जरूरत होगी, तब इसे हम कहां ढूंढ़ पाएंगे। यह तो हमेशा सुनने-सुनाने में जिंदा रहा है। एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी को विरासत में मिलता है। ऐसे साहित्य को समाप्त होने से बचाने की प्रबल भावना का फल है यह किताब।

हमने पुस्तक को दो भागों में बांटा है। बांटते समय हमने हर उम्र के बालकों का ध्यान रखा है, ताकि उन्हें प्रत्येक खंड में अपनी रुचि की कहानिया समान रूप से मिलें। लोक कथा खंड में हमने लोक कथाओं को उनके असली रूप में ही देने की कोशिश की है। मौलिक कथा खंड में नये लेखन की कथाओ के साथ उन सभी लोक कथाओं को स्थान दिया है जिनको आज के समय और

पारिस्थितियों के अनुसार नया रूप दिये जाने में इनके असली विषय में निखार आया है ताकि हमारे सत्साहित्य हितोपदेश और पंचतंत्र की कथाओं की तरह इस कल्याणकारी लोक कथा साहित्य को भविष्य के लिए सहेज कर रखा जा सके। इसमें हम कहां तक सफल हो पाये हैं, इसका लेखा जोखा करने का अधिकार हमारे नन्हे पाठकों को है।

—बलवीर त्यागी

'प्रकाशपुंज'
460-सी, पूर्वी बाबरपुर (छज्जूपुर)
शाहदरा, दिल्ली-110032
फोन : 2285029

अनुक्रम

मौलिक कथा खंड

लोक कथा खंड

मौलिक कथा खंड

झबरी का पंडित

जब मैं छोटा सा था, तो मुझे पिल्ले लड़ाने का बहुत शौक था। जैसे ही मुझे पता लगता कि अमुक घर में पिल्ले हैं, बस मैं खाना-पीना भूल जाता और उस घर के चक्कर काटने लगता।

इस शौक के कारण कई बार मुझे कुतियों का क्रोध भी झेलना पड़ता। किसी ने हाथ में काटा तो किसी ने पैर का मुलायम मांस नोच लिया और एक ने तो मेरा ऊपर वाला होंठ ही बीच से चीर दिया था, जिसकी निशानी आज भी मौजूद है।

कुछ दिनों तक तो मुझे उनका काटना-नोचना याद रहता लेकिन जैसे ही नए नए पिल्लों की 'कुईं-कुईं' सुनायी पड़ती, मैं पिछली घटना भूल जाता और मौका मिलते ही एक, दो पिल्लों को कमीज के पल्ले में छिपा कर घर ले आता। कई बार तो वे इतने छोटे होते कि उनकी आंखें भी ठीक तरह न खुली होतीं। प्यार भी मैं उनसे बहुत करता, मां की आंख बचा कर अपने हिस्से का दूध तक उन्हें पिला देता।

हमारे घर में एक झबरी कुतिया थी। जिस रोज मेरा छोटा भाई बोधराज पैदा हुआ, उस दिन झबरी ने तीन पिल्लों को जन्म दिया। तीनों तीन रंग के थे। एक भूरे कत्थई रंग का था और उसके माथे पर सफेद रंग का टीका था, इसलिए सब उसे पंडित जी कहते थे। दूसरा, रात के अंधेरे की तरह काला था। लेकिन इसके पंजे और पूंछ सफेद थे और कमर के बीचों-बीच सफेद रंग का एक चौड़ा पान बना था। तीसरी थी पिलिया, सफेद चिट्टी रुई के गोले जैसी।

बस मेरा खाना-पीना छूट गया। स्कूल से छुट्टी होती तो सीधा घर आता लेकिन नन्हें बोधराज को टिटहरी की तरह टांग उठा कर हाथों के चप्पू भांजता हुआ देखता तो उस पर प्यार आ जाता और कुछ देर के लिए पिल्लों को भी भूल जाता। उसके साथ देर तक खेलता। उसके नन्हे-नन्हे हाथ-पैर छूता। बड़े गिलगिले लगते। जी चाहता कि उसे रबड़ के गुड्डे की तरह भींच डालूं। मगर मां

बरजती नहीं भइये छोटा भइया है हाथ पैर उतर जायगे

फिर नन्हा अगा अगा कर बिलखन लगता तो मुझे उसके गाल पर बड़ा गुस्सा आता। जी मे आती कि एक-दो थप्पड़ लगा दू, पर मा के डर से कुछ न कहता और फिर सीधा झबरी के पुआल में बने घर में पहुंच जाता। झबरी मुझे देखकर 'कुईं-कुईं' कर पूंछ हिलाने लगती और मैं जेब में भरी रोटियां निकाल कर उसके सामने डाल देता। वह पिल्लों को छोड़ कर उठ खड़ी होती और मजे से रोटियां खाकर इधर-उधर घूमने लगती। बस मैं पिल्लों से खेलने लगता।

लेकिन एक बात से मुझे बड़ी हैरानी होती कि पिल्लों के तो हाथ पैर नहीं उतरते। ये भी तो नन्हे के साथ ही पैदा हुए थे। इनकी मां तो कभी हाथ पैर उतरने की शिकायत नहीं करती। फिर मां ही नन्हे को क्यों नहीं उठाने देती। धीरे-धीरे मेरा मन नन्हे से दूर होता चला गया और मैं ज्यादातर पिल्लों से खेलने मे ही अपना समय बिताने लगा। पंडित पिल्लों में सबसे मोटा-ताजा था और भूरी पिलिया सबसे पतली-दुबली थी। पर थी बड़ी तेज-तर्रार। जब मैं उसकी गर्दन पकड़ कर किसी पिल्ले से लड़ाता तो वह जोर-जोर से गुर्राती। फिर तेजी से झपटती और पिल्ले को चारों खाने चित कर देती।

एक दिन मैं स्कूल से लौटा तो मां धूप में बैठी बाल सुखा रही थी और नन्हा 'अंगा-अंगा' कर घर को सिर पर उठाये था। मैंने बस्ता एक ओर फेंका और नन्हे को गोद में भरकर मां के पास ले जाने लगा। अभी दो कदम ही चला था कि नन्हा मेरे हाथ से मछली की तरह फिसल गया। जमीन पर गिरते ही प्राण खीच गया। यह देखकर मां घबरा कर दौड़ी आयी और नन्हे को गोद में उठाकर एक भरपूर थप्पड़ मेरी कनपटी पर जमा दिया। मैं बिलबिला उठा और रोता हुआ पिल्लों की ओर चल पड़ा।

उस दिन के बाद मैं नन्हे के प्रति उदासीन रहने लगा। अब मां भी इतनी अच्छी नहीं लगती थी। सोचा था, मां मुझे प्यार नहीं करती। उसके लिए नन्हा ही सब-कुछ है।

धीरे-धीरे मेरा स्वभाव जिद्दी होता चला गया। मन में जो आता, करता सारा दिन घर से गायब रहता। अक्सर पिल्ले मेरे साथ रहते। उनके लिए घर से रोटी चुरा लाता। जिस दिन रोटी न मिलती, मैं पिल्लों को अपनी चाची के घर ले जाता और उनसे मांग कर रोटी खिला देता, छाछ पिला देता। मेरा चचेरा भाई सुखबीर भी मेरे साथ रहने लगा। काला पिल्ला उसने चुन लिया और पंडित को मैंने। हम उनकी खूब सेवा करते, कानों से चिचड़ी तक निकालते।

सुखबीर का घर तालाब के किनारे था। एक सुबह हम तालाब के किनारे वाली सड़क के साथ तेज धूप सेंकते हुए पिल्ले लड़ाने लगे। पिल्ले अब काफी बड़े हो गये थे और डट कर लड़ते थे। मेरा पिल्ला पंडित खूब तगड़ा था, वह सुखबीर के पिल्ले को खूब मारता था। लेकिन इस बार काले पिल्ले ने पंडित को नीचे डाल कर उसकी खूब दुर्गत बनायी।

लड़ाई बंद होते ही वह डर कर तालाब की ओर तेजी से भाग खड़ा हुआ। मैं उसे पकड़ने को पीछे-पीछे दौड़ा। मगर मेरी पकड़ में आने से पहले ही वह तालाब में लुढ़क गया। मैं भी एक क्षण सोचे बिना तालाब में कूद गया।

तालाब में हम दोनों के डूबने लायक काफी पानी था। बस दोनों के दोनो गुत्थमगुत्थ हो गये। हमें डूबते देख सुखबीर ने शोर मचाया। चाचा जी अंदर बैलों को चारा डाल रहे थे। वह दौड़े आये और मुझे तालाब से निकाल लिया। मगर पंडित का कुछ पता न चला। वह पानी पीकर नीचे बैठ गया था। मेरे पेट में ढेर सारा पानी भर गया। मुझे उल्टा लिटा कर चाचा जी ने पानी निकाला और फिर गीले कपड़े बदल कर मुझे लिहाफ में लपेट लिया। मुझे बर्फ-से ठंडे पानी का सुन्न चढ़ गया था। लिहाफ की गर्मी पाकर मैं सो गया।

दोपहर को जब मेरी आंख खुली तो मैं काफी कमजोरी महसूस कर रहा था। फिर भी पिल्लों का ध्यान आते ही मैं मां की आंख बचा कर जेब में रोटी भर झबरी के पास पहुंच गया। वह उदास पड़ी थी। काला पिल्ला और सफेद पिल्लिया उसके पास मस्त हुए खेल रहे थे।

मैंने जेब से रोटी निकाल कर झबरी के सामने डाली। मगर उसने रोटी सूंघी तक नहीं। उसकी आंखों में अथाह दुख था। मैं कांप गया। मैं अपराधी था। उसका बेटा मैंने डुबोया था।

मेरी आंखें भर आयी थीं। मैंने झबरी के सिर पर हाथ फेरा। उसने आंखें बंद कर अपनी थूथन अगले पैरों पर रख ली, वह बेटे का गम सहन नहीं कर पा रही थी। फिर एकाएक वह उठी और तालाब के किनारे उसी जगह पहुच गयी, जहां उसके लाडले ने जल समाधि ली थी। मैं भी उसके पीछे-पीछे वहीं पहुंच गया। तालाब में झांक कर उसने जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। मैं खड़ा-खड़ा उसका विलाप सुनता रहा, लेकिन मेरा मन भी झबरी के साथ रो रहा था। तभी मां आयी और मेरा हाथ पकड़ कर बोली, "सुबह तो डूबा था, अब फिर यहां आ गया।"

और फिर मुझे हाथ पकड़ कर घर की ओर ले जाते हुए चौंक कर बोली,

अरे तुझे तो बुखार है सर्दी लग गयी है चल रजाई ओढ़ कर लेट

इसके बाद मुझे पता नहीं रहा। मैं सारी रात बुखार में भुनता रहा। मां मुझे गोदी में लिये रात भर जागती रही। नन्हा रोता तो दूध पिला कर दूसरी चारपाई पर पिताजी के पास सुला देती। मैं बुखार में सारी रात बड़बड़ाता रहा, ''मां, मैंने पंडित को डुबो दिया। झबरी मुझे काटेगी। मैं उसका पिल्ला कहां से दूंगा?''

मां के गरम-गरम आंसू मेरे कपोलों पर टप-टप पड़ते तो मेरी आंखें मुंद जातीं और मां मुझे प्यार से छाती से लगा कर कस लेतीं। मैं मां के मुंह को टुकुर-टुकुर ताकता रहता कि यही वह मां है जिसके बारे में मैं सोचता था कि वो नन्हे को ज्यादा प्यार करती है और मुझे बिलकुल नहीं चाहती। फिर झबरी मेरी आंखों के सामने आ जाती, फिर पंडित। मेरी आंखों में बड़े-बड़े आंसू टपकने लगते।

मारीच का न्याय

बात उस जमाने की है, जब भारत में अंग्रेजी राज था। मारीच का न्याय अपने जिले के आस-पास के जिलों तक में प्रसिद्ध था। वह कलेक्टर था।

मारीच अंग्रेज था और उसका असली नाम विंटसन मारक्विच था। लेकिन लालन पालन एक भारतीय जाट परिवार में होने के कारण उसका नाम गांवों की परम्परा के अनुसार बिगड़ कर मारीच हो गया था।

एक बार मारीच का पिता अपनी पत्नी के साथ मसूरी घूमने जा रहा था। रास्ते में उसकी मां को प्रसव पीड़ा हुई और भैंसी गांव तक पहुंचते-पहुचते पीड़ा इतनी बढ़ी कि उसके लिए वहां रुकना जरूरी हो गया। सड़क के किनारे रामसिंह जाट का मकान था। वहीं रामसिंह की पत्नी की देखरेख में विंटसन का जन्म हुआ। दुर्भाग्यवश उसकी मां उसे जन्म देने के बाद सख्त बीमार हो गयी और शहर से डाक्टर आने तक चल बसी। रामसिंह के यहां कोई बच्चा न था। रामसिंह और उसकी पत्नी ने विंटसन के पिता से बच्चे को पालने की इच्छा प्रकट की। वह मान गया। इस प्रकार मारीच भारतीय अंग्रेज बन गया।

मारीच की शिक्षा गांव में शुरू हुई। फिर वह अपने पिता के पास शहर चला गया। वहां उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की। उन दिनों उसका पिता सिंचाई विभाग में बड़ा अफसर था। पढ़-लिख जाने के बाद मारीच भी अंग्रेजों की परपरा के अनुसार कलेक्टर बन गया। लेकिन वह अन्य अंग्रेजों की भांति भारतीयों को छोटा नहीं समझता था। वह इतना बड़ा अफसर हो जाने पर भी रामो को मां और रामसिंह को पिता जी कहता था। गरीबों के लिए उसके दरवाजे हर समय खुले थे और उनके साथ न्याय करने की पूरी कोशिश करता था।

एक बार की बात है कि रंगपुर गांव जमींदार ने पटवारी से साठगांठ कर मेलाराम माली के बाग पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया। माली बहुत गरीब था। उसकी जीविका का साधन केवल यह बाग था। मुकदमा लड़ने के लिए उसके पास धन न था। उसने गांव के सभी लोगों से बाग वापस दिलाने की प्रार्थना की।

मगर जमींदार के खिलाफ मुंह खोलने की किसी में हिम्मत न थी उन दिनों जमींदार बड़े अत्याचारी होते थे और बात बात पर गरीब रियाया की डण्डों से पिटाई करते थे, बेगार लेना अपना अधिकार मानते थे।

जब माली की बात सुनने को कोई तैयार न हुआ तो वह बेचारा कुढ़ता कलपता दूसरे गांव वालों के पास गया। किंतु वहां भी वही हाल था। एक जमींदार दूसरे की हिमायत क्यों न करता! आज रंगपुर के जमींदार के साथ है तो कल उसके साथ भी वैसी ही स्थिति हो सकती है।

अंत में मेलाराम निराश होकर अपने गांव लौट रहा था। रास्ते में उसे एक ऐसा आदमी मिला, जिसके बाप-दादा की सारी जमीन जमींदार हड़प गया था और मारीच ने न्याय कर उसे उसकी जमीन वापस दिलायी थी। उसने मेलाराम को सलाह दी कि वह भी कलेक्टर साहब के सामने अपना दुखड़ा कहे। शायद इन्साफ हो जाये।

मेलाराम अपने घर न जाकर सीधा मारीच से मिलने शहर गया। उसने रो रोकर सारी कहानी मारीच को सुनायी। पूरी कहानी सुनने के बाद मारीच काफी देर तक गम्भीरता से सोचता रहा। वह इस नतीजे पर पहुंचा कि सारी शरारत पटवारी की है, जिसने जमींदार से घूस लेकर बाग की काश्त उसके नाम लिख दी। मारीच ने माली को सांत्वना दी कि वह चार दिन बाद गांव आकर स्वयं फैसला करेगा और उसके आने की बात वह किसी से न कहे तथा निश्चित समय पर बाग में पहुंच जाये।

चार दिन बाद मारीच घोड़े पर सवार होकर माली के गांव पहुंच गया। उसने अपने साथ आये सिपाहियों को इधर-उधर छिपा दिया और किसी किसान से माली का बाग पूछ लिया। माली वहां पहले से मौजूद था। उसने माली से कहा कि वह उसे रस्सी से पेड़ के साथ बांध डाले और घोड़ा अपने घर ले जाये। माली घबरा गया। अंग्रेजों से उस जमाने में वैसे ही लोग डरते थे। उसने हाथ जोड़कर कहा, "सरकार, मैं आपको कैसे बांध सकता हूं?"

"घबराओ नहीं। तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा।" मारीच ने उसका हौसला बढ़ाते हुए कहा, "अगर तुमने ऐसा न किया तो बाग नहीं मिलेगा।"

मेलाराम ने कांपते हाथों मारीच को पेड़ से बांध दिया और घोड़ा लेकर अपने घर की ओर चल दिया। जब वह काफी दूर निकल गया तो मारीच ने शोर मचाया, "बचाओ, बचाओ।"

उसकी चीख-पुकार सुन कर आस-पास के खेतों में काम करते लोग

काम छोड़ कर बगीचे में दौड़ चले आये वहां एक अंग्रेज को पेड़ से बंधा देख कर उनके रंग सफेद पड़ गये न जाने अब गांव पर कौन आफत आये? मारीच उन्हें देख कर जोर से चिल्लाया, ''मुझे इस बाग के मालिक ने लूट लिया है मैं इस जिले का कलेक्टर हूं। इस बाग के मालिक को सख्त से सख्त सजा दूंगा। आप लोग खड़े क्या देख रहे हैं। मुझे जल्दी खोलो, ताकि वह कहीं भाग न जाये। मुझे उसका नाम बताओ।''

सब लोगों ने एक-दूसरे का मुंह ताका। किसका नाम बतायें। अगर जमींदार का नाम लिया तो कलेक्टर साहब उसे कड़ी सजा देंगे और फिर नाम बताने वाले की शामत आयी समझो। उनमें से एक को सूझा, क्यों न मेलाराम माली का नाम बता दिया जाये। इससे जमींदार भी प्रसन्न होगा और अंग्रेज साहब का लुटेरा भी मिल जायेगा। शायद साहब खुश होकर कोई इनाम भी दें। कुछ दिन पहले माली मालिक था ही बाग का।

बस, एक ने माली का नाम लिया तो सभी ने उसको मालिक बताया। पेड़ से खोलने के बाद मारीच बोला, ''आप सब लोग गांव चलिए! वहां पर कार्यवाही की जायेगी।''

जमींदार की बैठक पर सारे गांव के लोग इकट्ठे हो गये। माली को भी बुलवा लिया गया। मारीच के सिपाही उसका घोड़ा माली के घर से ले आये। मेलाराम भय के मारे बुरी तरह कांप रहा था। जमींदार कलेक्टर साहब और उसके सिपाहियों की आवभगत में भागा-भागा फिर रहा था। वह मन-ही-मन खुश था कि अब खतरे की कोई बात नहीं। मेलाराम तो अब जेल में चक्की पीसेगा। सारे गांव ने गवाही में मेलाराम को बाग का मालिक बताया है और साहब का घोड़ा भी उसके घर से बरामद हुआ है। लेकिन जब मारीच ने फैसला सुनाया तो जमींदार सिर पकड़ कर रह गया। बाग मेलाराम को दे दिया गया और पटवारी को खतौनी में गलत काश्त भरने के जुर्म में नौकरी से निकाल दिया गया।

मिट्टी के खरगोश

लगड़ू निहायत शरीफ कुत्ता है। नन्ही सीमा उसे बेहद प्यार करती है। उसके मुंह में अपने नन्हे-नन्हे हाथों से रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े ठूंसती है। पर मजाल जो जरा भी उसके दांत सीमा की उंगलियों को छू जायें। उसके कानों को वह लगाम की तरह खींचती है, पूंछ को रस्सी की तरह ऐंठती है; और लगड़ू यह सब बदतमीजी खुशी-खुशी सहन करता रहता है। मानो गुस्सा करना उसकी आदत नहीं है और गुर्राना उसने सीखा नहीं। और तो और, सीमा के नन्हे खरगोश भी उससे जरा नहीं डरते। जब वह पैर पसारे सोया होता है तो वे उसके ऊपर घुडदौड़ मचाये रहते हैं। पर रात को जब हम सोये होते हैं, तो यही लगड़ू शेर हो जाता है। एक अच्छे चौकीदार की तरह वह दरवाजे पर मुस्तैदी से अपनी ड्यूटी बजाता है।

एक दिन हम चिड़ियाघर देखने गये। मैंने सीमा को खरगोशों के बाड़े में उतार दिया। जैसे ही वह ठुमकती हुई खरगोश पकड़ने चली, सारे खरगोश रुई के फाहे-से उछल कर बिलों में घुस गये। सीमा परेशान। बेचारी तीन साल की ही तो है। करे तो क्या करे! बस उसने बिलों के हाथ डालना शुरू कर दिया मगर उसके खरगोश नन्हे हाथों की पकड़ से बाहर रहे। वह उदास हो गया।

बाड़े के निकट ही पेड़ की छांव में खरगोशों की देख-रेख करने वाला कर्मचारी बैठा बीड़ी पी रहा था। सीमा की भोली और रोनी सूरत पर उसे प्यार आ गया। वह बाड़े में उतरा, बिल से एक सफेद चित्ता खरगोश निकाला और सीमा के फ्रॉक के पल्ले में रख दिया। वह किलक उठी और अपनी गुड़िया की तरह उसे पुचकारने लगी।

लेकिन सीमा का यह खेल ज्यादा देर न चल सका। अभी सारा चिड़ियाघर देखना बाकी था। हम चलने लगे तो कर्मचारी सीमा से खरगोश वापस लेने लगा। सीमा ने खरगोश को कसकर छाती से लगा लिया। उसने बड़ी मुश्किल से खरगोश वापस लौटाया। इसके बाद उसकी सारी चंचलता गायब हो गयी। उसने

अपनी मम्मी के गले में मुंह छिपा लिया। घर लौटे तो उसे एक ही रट थी पापा खरगोश, पापा खरगोश।

मेरे एक साथी रवि बाबू के यहां खरगोश पले हैं। शाम को सीधा रवि बाबू के घर पहुंचा और एक सुंदर जोड़ा खरगोशों का ले आया।

खरगोश पाकर सीमा की सारी उदासी उड़ गयी। वह रात में देर तक उनसे खेलती रही और जब सोयी तो उन्हें अपनी दायीं-बायीं करवट में लिटा लिया।

खरगोश सीमा के ही नहीं पूरे घर के लिए खिलौने हो गये। लेकिन हम इन नये खिलौनों के चक्कर में बेचारे लंगड़ू को बिलकुल भूल गये। याद आ गया तो टुकड़ा डाल दिया, वरना उसकी छुट्टी। लंगड़ू इस उपेक्षा को सहन नहीं कर पाया और एक दिन उछलते-कूदते खरगोशों पर टूट पड़ा, किंतु मैंने एक डंडा लंगड़ू की कमर के बीचों-बीच जमा दिया। वह चांय-चांय करता हुआ भाग गया।

इस घटना के बाद वह बेहद संजीदा हो गया। खरगोश चाहे उसके मुंह के नीचे से निकल जायें, वह उन्हें सूंघता तक नहीं था। हां, उसकी आंखों में खरगोश के लिए नफरत साफ दिखायी पड़ती।

गर्मी के दिन थे। रात में हम खरगोशों को बंद किया करते थे। एक दिन सीमा की मम्मी बोली कि खरगोशों को हमारी तरह गरमी लगती होगी, क्यो न उन्हें उस जाली में बंद कर दिया करें जो एक तख्ता टूटने की वजह से वर्षों से बेकार पड़ी है। बात समझ में आ गयी और मैंने टूटे हुए तख्ते को रस्सी से कस कर बांध दिया। उस दिन के बाद हम खरगोशों को जाली में बंद करने लगे।

एक दिन आधी रात के बाद ज़ोरों की आंधी आयी और साथ ही वर्षा भी होने लगी। हम सब कमरे के भीतर चले गये और खरगोशों की जाली को बाहर ही भूल गये। लंगड़ू शायद डंडा खाने की कसक नहीं भूला था। आज उसे मौका मिल गया।

एकाएक मेरी नींद खुल गयी। खरगोश 'कीं-कीं' कर रहे थे। मैं दरवाजा खोलकर बाहर आया। तब तक लंगड़ू ने एक खरगोश मार दिया था और दूसरे को मुंह में दबोच रखा था। मुझे देखते ही वह छत पर चढ़ गया। ऊपर जाकर मैंने देखा, सीढ़ियों पर दूसरा खरगोश भी मरा पड़ा था और लंगड़ू का कहीं पता न था।

उस दिन के बाद लंगड़ू ने हमारे घर में पैर नहीं रखा। कभी दफ्तर आते-

जाते गली में मिल जाता तो वह कूद कुई कर मेरे पास में नहीं ल
आखें साफ कहती हैं जानवर हूं तो क्या हुआ समझना ह
खरगोशों ने मेरा प्यार छीना और मैंने तुम्हारा बदला मामा का खुशिय

उस दिन के बाद वास्तव में सीमा उदास रहने लगी थी। म
रखने के लिए दो मिट्टी के खरगोश ला दिये हैं।

मीना और भिखारिन

"ए बीबी...ऽ...ऽ...ऽ एक रोटी दे दो...ऽ।" दिन की किरणें छिपते ही गली के हर दरवाजे पर वह करुण आवाज सुनायी देने लगती है। मेरा ध्यान कभी-कभार ही उस ओर जाता है, किन्तु नन्ही मीना न जाने क्यों दरवाजे की ओर खिंची चली जाती है। वह किवाड़ पकड़ कर बाहर गली में झांकने लगती है; और तब तक झांकती रहती है, जब तक वह दस-ग्यारह वर्ष की भिखारिन लड़की हमारे दरवाजे पर आ न जाये। वह प्यार से मीना के गाल थपथपाती हुई कहती है, "जा रानी, रोटी ले आ।"

मीना मोर की तरह गर्दन को आगे-पीछे करती हुई लड़की से अपनी तोतली भाषा में पूछती है, "ओती! ऐं, ओती लेगी? अबी लाता हूं।"

मीना ने अपने भाइयों की देखा-देखी लड़कों की भाषा में बोलना सीखा है। वह हमेशा पुल्लिंग में बोलती है। उसकी यह तोतली-अटपटी भाषा इतनी प्यारी लगती है कि मेरे दोस्त घर आते हैं तो उसे ज्यादा-से-ज्यादा बोलने को छेड़ते हैं।

मीना ठुमकती हुई रसोईघर में चली जाती है। अपनी मां का कंधा पकड झकझोरती हुई कहती है, "मम्मी जी, ओती दे दो। मैं उछे देकल आऊंगा।"

उसकी मम्मी ताजी सेंकी रोटी चिमटे से पकड़ कर उसकी ओर बढ़ा देती है। वह एक पल रोटी पकड़ने को हाथ बढ़ा कर पीछे खींच लेती है—"नई, गलम ऐ।"

उसकी मां हँसती हुई रोटी प्लेट पर रख कर उसे पकड़ाते हुए मुझसे कहती है, "सुनते हो जी, लाडली कितनी सयानी है! गलम रोटी को छूती नहीं।"

यह कब से शुरू हुआ, मुझे याद नहीं। हां, वह लड़की अब रोज आती है और इसी प्रकार मीना से रोटी लेकर चली जाती है।

मीना का जन्मदिन था। घर में काफी चहल-पहल थी। मेरे मित्र और सम्बन्धी सपरिवार आये हुए थे। मीना उनके बच्चों के साथ चहकती फिर रही

थी। ढेर सारे खिलौने, मिठाई और फल उपहार में आये थे। [illegible] समय जन्मदिन का केक काटा गया। पार्टी हुई। सब लोग रंगरलियों में लगे थे तो ही वही करुण पुकार सुनाई पड़ी, "ए बी...ऽ...ऽऽ जी एक रोटी दे दो।"

हम में से किसी ने उस आवाज पर ध्यान नहीं दिया। लेकिन मीना चुंबक पर लोहे की तरह खिंची चली गयी। उसी तरह किवाड़ पकड़ कर बोली "ओत्ती, ऐं! ओत्ती लेगी? ओत्ती नहीं है।"

वास्तव में उस रोज घर में पकवान बने थे। रोटी न बनने से शायद मीना ने ऐसा कह दिया था।

लड़की ने प्यार से उसके गाल सहलाये और बोली, "रानी, भूख लगी है अम्मा से रोटी ले आओ।"

एक क्षण रुक कर मीना चहक उठी, "अबी लाती हूं।"

वह चाबी वाले खिलौने की तरह ठुमकती हुई रसोई की ओर न जाकर कमरे की ओर चल दी। वह सीधी संदूक के पास पहुंची। संदूक में हाथ डाल कर उसने दिन में छिपाये फल और थोड़ी सी मिठाई निकाली। मैं हैरान रह गया। शायद मीना को अपनी मां से उस लड़की के लिए फल और मिठाई मिलने की आशा न थी। इसी लिए उसने अपने खाने की चीजों में से उसके लिए फल और मिठाई बचा कर रख दिये। मैं उसके बाल हृदय के प्रेम तथा भोलेपन पर गद्गद हो गया। लड़की ने फल और मिठाई लेकर उसका मुंह चूम लिया। पास खड़ी मिसेज शर्मा यह देख रही थी। उसने मीना की मम्मी से कहा, "आपको बच्चों को ऐसे गंदे बालकों से दूर रखना चाहिए।"

"बहन जी, बच्चे भगवान का रूप होते हैं, चाहे वह किसी के हों। हमें बच्चों में भेद-भाव की भावना पैदा नहीं करनी चाहिए।" मीना की मां ने सादगी से उत्तर दिया और मिसेज शर्मा का मुंह लटक गया। उसके उत्तर पर मेरा सीना गर्व से फूल गया। मेरा परिवार सभ्य कहे जाने वाले लोगों से किसी बात में तो आगे है। हम इन्सानों में घृणा का बीज क्यों बोयें? बापू भी तो सारी उम्र यही कहते रहे थे।

अगले दिन लड़की नहीं आयी। मीना ठीक समय पर दरवाजे पर आ खड़ी हुई। सर्दी के दिन। बला की सर्दी थी उस दिन। मैंने मीना को [illegible] पुकारा, "बिटिया, अंदर आ जाओ। ठंड लग जायेगी।"

मगर मीना ने न तो जवाब दिया और न ही वह अपनी जगह से हिली। मैंने पत्नी को पुकारा, "सुनती हो जी, लड़की को अंदर ले आओ। आज बहुत सर्दी

वह रसोई घर का काम छोड़ कर मीना को जबरदस्ती उठा लायी मीना को रोता और मचलता छोड़ कर वह पुन रसोई में चली गयी मैंने मीना को चाकलेट देकर फुसलाना चाहा मगर उसने नहीं ली वह बार बार कहती रही "पापा जी, मैं उच्छे आने दूंगा।"

"दे देना, उसे आने तो दो।" मैंने उसे दुलारते हुए कहा।

मीना उसके आने का इन्तजार करती रही, किन्तु वह नहीं आयी। अगले दिन भी नहीं, उससे अगले दिन भी नहीं। और मीना रोज उसी प्रकार दरवाजे पर खड़ी होकर उसकी प्रतीक्षा करती। उसकी मां बड़ी मुश्किल से उसे वहां से उठा कर लाती। बहुत बहलाने-फुसलाने पर वह मन मार कर सो जाती।

आखिर एक दिन वही हुआ जो मैं सोचता था। मीना को सर्दी लग गयी। दफ्तर से लौट कर देखा तो वह तेज बुखार में भुन रही थी। बिना कपड़े बदले मैं उसे डॉक्टर के पास ले गया। वह रात-भर बड़बड़ाती रही, "ओत्ती ऐं, ओत्ती होगा? अब्बी लाता हूं...पापा जी, वह आ गयी। मम्मी जी ओत्ती दे दो। मैं उछे देकर आऊंगा।"

हम पति-पत्नी रात भर परेशान रहे। पता नहीं, वह लड़की क्यों नही आती? शायद उसे भी सर्दी लग गयी हो। बेचारी एक फटा-चिथड़ा ही तो पहने रहती है। या फिर हो सकता है उसके घर में और कोई बीमार हो। खैर, दूसरे दिन मीना का बुखार उतर गया। मगर वह उस दिन से उदास रहने लगी। स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया। वह अधिकतर गुमसुम रहती या फिर 'रीं-रीं' करती रहती। अपनी समझ में बिलकुल न आ रहा था कि उस लड़की को कहां खोजा जाये। गली-मुहल्ले वालों से सिर्फ इतना पता लगा था कि वह पास की गंदी बस्ती में रहती है। पर इतने पते से उसे ढूंढ़ना सरल न था। और डॉक्टर का कहना था कि जब तक वह उस लड़की को भूल न जाये या फिर वह इससे मिल न ले, तब तक इसकी उदासी दूर न होगी।

आजकल दफ्तर में काम अधिक होने के कारण मैं घर देर से लौटता था। मैंने कपड़े उतारने शुरू किये ही थे कि वह रिरियाती आवाज सुनायी पड़ी, "ऐ बी ..जी...ऽ...ऽऽ जी...ऽ एक रोटी दे दो।"

मैं कपड़े हैंगर पर टांगता हुआ सोच रहा था कि चलो, मीना अपनी सहेली पाकर खुश हो जायेगी। मगर मीना की तरफ किसी का ध्यान न था कि वह कब घर से निकल गयी। एकाएक गली में शोर मचा। मैं हड़बड़ा कर बाहर भागा।

गली मे भीड़ इकट्ठी हो रही थी। भीड़ के बीच में वह भिखारिन लड़का खून में लथपथ पड़ी थी। मीना एक ओर सहमी खड़ी थी। पास ही एक मोटर साइकिल खड़ी थी। मुझे समझते देर न लगी कि ऐक्सीडेण्ट हो गया है। भीड़ में खड़े एक सज्जन कह रहे थे, ''साहब, लडकी ने कमाल कर दिया। इस छोटी लड़की को बचाने के लिए अपनी जान की परवाह नहीं की।''

मैं फुर्ती से मीना को उठा कर घर ले गया और कपड़े पहन कर उस लड़की को रिक्शे में अस्पताल ले गया। वहां मुझे गंदी बस्ती का एक आदमी मिला। लड़की को पहचान कर वह बोला, ''बाबूजी, बेचारी की मां की कल ही तो यहां से छुट्टी हुई है। बहुत गरीब है। फिर भी वह उस लड़की को पढ़ा रही है। मेहनत-मजूरी कर एक जून का खाना जुटा पाती है। शाम को यह बेचारी पास-पड़ोस से रोटी मांग लाती है।''

मैं अपने में समाया था। सोच रहा था, 'यदि यह लड़की मीना को न बचाती तो आज इसकी जगह वह यहां भरती होती।'

चांद का राजकुमार

कविता का विवाह हुए अभी कुल तीन महीने ही हुए थे। वह बहुत परेशान थी कि उसका पति हर समय अपनी प्रयोगशाला में कांच की नलियों और बोतलो के द्रव्यों में खोया रहता है। उसका बिलकुल भी ध्यान नहीं रखता। उसके साथ कभी घूमने अथवा सिनेमा नहीं जाता। वह अनुरोध करती है तो कह देता है, ''प्रयोगशाला में बहुत काम है। कल चलेंगे।''

यह 'कल' दुकान पर लटकी उस तख्ती के 'कल' की तरह था, जिस पर लिखा होता है : 'आज नकद कल उधार।' यानी कभी न आने वाला कल। बस, वह मन मार कर रह जाती और अब तो उसने कहना ही छोड़ दिया है।

उसका पति दिवाकर भौतिकी का वैज्ञानिक है। उसके अद्‌भुत ज्ञान की देश-विदेश में चर्चा है। उसके नये-नये प्रयोगों और आविष्कारों से मानव जाति का बहुत भला हुआ है। यही कारण है कि उसे दुनिया भर की विज्ञान अकादमियों से बहुत-से पुरस्कार एवं पदक मिले हैं। लेकिन उसे अपनी सफलताओं पर कभी संतोष नहीं हुआ और वह दिन-रात भूख-प्यास भुलाये प्रयोगशाला में यंत्रों से उलझा रहता है।

एक दिन प्रयोगशाला में जोरों का धमाका हुआ तथा दिवाकर की चीखें सुनायी दीं। कविता और घर के नौकर दौड़ते हुए अन्दर गये। अन्दर का दृश्य देखकर वे कांप गये। दिवाकर फर्श पर अचेत पड़ा तड़प रहा था। उसके चारों ओर कांच के टुकड़े बिखरे थे। सारे कमरे में एक दमघोंटू गैस फैल रही थी। उन्हें समझते देर न लगी कि अभी जो धमाका हुआ था, उससे यह दुर्घटना हुई है। जिस ऐप्रेटस पर दिवाकर काम कर रहा था, वह नष्ट हो गया था।

उन सब ने मिलकर जल्दी से दिवाकर को बाहर निकाला। टेस्ट ट्यूब फटने से सारा घोल उसके चेहरे और हाथों पर आ गिरा था, जिसकी जलन के कारण वह छटपटा रहा था। उसे अस्पताल ले जाया गया। डॉक्टरों ने घोल साफ कर उसकी गर्दन से माथे तक तथा हाथों की कुहनियों तक पट्टियों से लपेट

दिया। वह कई महीने तक इसी स्थिति में अस्पताल में पड़ा रहा।

आखिर पट्टी खोलने का दिन आया। कविता उस दिन सुबह ही अस्पताल पहुंच गयी थी। उसके मन में उमंग थी कि तीन महीने बाद वह अपने पति का मुंह देख सकेगी। नौ बजे डॉक्टरों ने पट्टी खोलनी शुरू की। जैसे-जैसे पट्टी खुलती जा रही थी, कविता का दिल तेजी से धड़क रहा था। पट्टी का आखिरी फेर उतरा तो कविता की चीख निकल गयी। दिवाकर का एक तरफ का चेहरा बुरी तरह से विकृत हो गया था। जबड़ों की हड्डी तथा दांत बाहर झांकने लगे थे। दूसरी कनपटी भी जल जाने के कारण काफी भद्दी हो गयी थी। कविता दिवाकर का यह डरावना रूप देख कर डर गयी।

डॉक्टरों ने कई बार ऑपरेशन कर दिवाकर की कनपटी पर मांस तो चढ़ा दिया लेकिन उसका पहले वाला रूप लौट कर नहीं आया। उसके होंठ भद्दे हो गये थे तथा चेहरा बहुत भयानक हो गया था—ऐसा कि जब वह घर से बाहर निकलता तो बच्चे तक डर जाते।

दिवाकर बहुत दुखी रहने लगा। मित्रों ने धीरे-धीरे साथ छोड़ दिया। कविता भी अब कम ही उसके सामने आती। मानो सब लोग उसके गुणों को कम और सुन्दरता को ज्यादा पसन्द करते थे। दिवाकर दिन-रात मन ही मन कुढ़ता रहता। वह दुखी मन से सोचता, क्यों न प्रयोगशाला में कोई जहर बना कर खा ले। ऐसे जीने से तो मरना अच्छा। लेकिन अगले क्षण ही उसकी बुद्धि कहती, 'अभी बहुत काम करना है। मर जाओगे तो मानव कल्याण के सारे सपने धरे रह जायेंगे। अपने लिए नहीं, पूरी मनुष्य जाति के लिए जीओ, देश के लिए जीओ, दीये की तरह। जो स्वयं जल कर दूसरों को प्रकाश देता है। फिर तुम तो वैज्ञानिक हो। बड़े-बड़े आविष्कार करते हो। अपनी कुरूपता को लेकर ही कोई अनुसंधान करो, ताकि तुम्हारे साथ-साथ दुनिया के कुरूपों का भला हो सके।'

और एक दिन जब कविता बिना कुछ कहे अपने पिता के पास चली गयी और उसके बुलाने पर भी यह कह कर आने से इन्कार कर दिया कि उसे उसकी सूरत से डर लगता है तो वह अपनी कुरूपता को मिटाने के लिए जी जान से जुट गया।

एक रोज वह पलंग पर लेटा अपनी कुरूपता के बारे में सोच रहा था। खिड़की के कांच से छन कर चांद की किरणें उसके मुंह पर पड़ रही थीं। एकाएक उसके मन में विचार आया कि जब सूर्य की किरणों से ऊर्जा प्राप्त की

जा सकती है, बिजली बनायी जा सकती हे, तो चाद की किरणो से उसका रूप भी लिया जा सकता है। क्यों न मैं चांद की किरणों को एकत्रित करके कोई ऐसा पदार्थ तैयार करूं जो मेरा रूप चांद जैसा सुंदर बना सके।

उस दिन के बाद से वह अपनी प्रयोगशाला में व्यस्त रहने लगा। उसने कई शक्तिशाली नतोदर तथा उन्नतोदर लैंसों की सहायता से एक ऐसा यंत्र तैयार किया जो चांद की किरणों को एकत्रित कर सके, कई द्रव्यों को मिला कर ऐसा मिश्रण बनाया जो किरणों को उसमें से गुजारने पर उन्हें सोख ले।

चांदनी रातों में वह सारी-सारी रात अपने यंत्र पर काम करता। मिश्रण का परीक्षण करके देखता, लेकिन सफलता कोसों दूर दिखायी देती। कई बार तो उसने सोचा कि यह काम संभव नहीं है। व्यर्थ में क्यों अपना समय बर्बाद करे। किंतु जैसे ही उसे अपनी कुरूपता का ध्यान आता, वह पूरी लगन और तत्परता से अपने अनुसंधान में खो जाता। सोचता, आज विज्ञान ने असंभव को संभव कर दिखाया है, फिर वह हिम्मत क्यों हारे?

वर्षों बाद शरद पूर्णिमा की रात में उसे ऐप्रेटस पर कसे फ्लास्क में कुछ भौतिक परिवर्तन होते जान पड़े। वह प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा। उसे अपनी खोज में अवश्य सफलता मिलेगी। जैसे-जैसे चांद आकाश में चढ़ता जा रहा था, वैसे-वैसे घोल में क्रिया तेज होती जा रही थी। आधी रात के बाद चांद ढलना शुरू हुआ तो क्रिया मंद होने लगी। उसने स्टैण्ड से फ्लास्क को ढीला कर थोड़ा-सा घोल टेस्ट ट्यूब में लिया और फिर अपने जले हाथ पर एक बूंद टपका कर रगड़ी। आश्चर्य! हाथ पर मानो चांदी की कलई कर दी गयी हो। चांदनी जैसी चमक आ गयी हाथ में। उसने टेस्ट ट्यूब से थोड़ी और बूंदें लेकर अपने हाथों और चेहरे पर मलीं। आईने में अपनी शक्ल देखी तो आंखें चौंधिया गयीं। उसका चेहरा चांद के समान जगमगाने लगा था। उसकी कुरूपता न जाने कहां गायब हो गयी थी। वह प्रसन्न हो नाचने लगा, 'अरे वाह! मैं तो चांद का राजकुमार हो गया हूं। अब मेरे से अधिक कौन सुन्दर होगा दुनिया में!' उसने घोल का नाम रखा 'शशिरस'।

लेकिन...लेकिन यह क्या। जैसे-जैसे चांद छिपने लगा, शशिरस का प्रभाव कम होने लगा और दिन की पहली किरण के साथ उसका सारा रूप गायब हो गया। वह पहले की भांति कुरूप हो गया। लेकिन जैसे ही फिर रात आयी, उसका रूप जगमगाने लगा। उसे समझते देर न लगी कि जैसे दिन में सूर्य की किरणों से उर्जा ली जा सकती है, बिजली बनायी जा सकती है, वैसे ही

शशिरस भी चांद की चांदनी में ही कायम रहता है। लेकिन अगले क्षण ही उसके मस्तिष्क में विचार आया कि जब बिजली को दिन में इकट्ठी करके उसमें रात में काम लिया जा सकता है तो शशिरस के लिए भी कोई ऐसा यंत्र बनाया जा सकता है जो रात में एकत्रित की गयी चमक को दिन में खत्म न होने दे। लेकिन पहले वह अपने मित्रों को इस अनोखी खोज का चमत्कार दिखायेगा तथा कविता को उसके पिता के यहां से लौटा कर लायेगा।

एक दिन चांदनी रात में वह सजधज कर अपनी ससुराल गया। उसका चांद-सा रूप देखकर ससुराल वाले चकित रह गये। कविता ने तो कभी सोचा भी न था कि दिवाकर इतना सुन्दर हो जायेगा। वह उसके साथ आने को तैयार हो गयी, मगर दिवाकर ने चलने से पहले यह शर्त तय की कि नये यन्त्र के आविष्कार तक वह दिन में उसकी प्रयोगशाला में नहीं आयेगी और न ही दिन में उससे मिलने की कोशिश करेगी।

रीमा की गुड़िया

"पापा, गोलिया लाये?" रीमा ने ठुमकते हुए आकर मेरे पैरों को कब्जा लिया। जब उसे अपनी कोई फरमाइश पूरी करानी होती है तो वह इसी प्रकार मेरे पैरों मे आकर चिपटती है।

मैंने दफ्तर से लौट कर अभी एक पैर का जूता उतार कर मोजा उतारना शुरू ही किया था, तभी मुझे अपने पड़ोसी बाबू संतराम के कमरे में कुछ दिन पहले जनमे बच्चे के टिटियाने की आवाज सुनायी पड़ी। समझते देर न लगी कि संत बाबू के यहां सातवीं लड़की ने जन्म लिया है और वह राजा हो गये हैं। मैंने बचपन में दादी मां से कई कहानियों में सुना था कि एक राजा के सात बेटियां थीं। तब मैं सोचता था कि सात बेटियों वाले सभी राजा होते होंगे।

खैर, संत बाबू न पहले राजा थे और न अब हुए। पर उनकी यह सातवीं बेटी किसी राजकुमारी से कम न थी। बिलकुल जापानी गुड़िया-सी, प्यारी-प्यारी, गोल--मटोल। गहरी काली आंखें, लोहरे बाल, पान चबाये-से लाल-लाल होंठ, बटुआ-सा मुंह। रंग ऐसा है कि हाथ लगाने से मैला हो जाये। पालने में झूलती हुई यह नन्ही गुड़िया हाथों की मुट्ठी बंद कर टिटहरी की तरह पैर आसमान की ओर उछालती, तो बड़ी भली लगती। संत बाबू ने इसको प्यार का नाम दिया—गुड़िया रानी, जो कुछ ही दिनों में छोटा होकर सिर्फ गुड्डी हो गया।

गुड्डी के जन्म पर मेरी चार साल की पुत्री रीमा को बहुत आश्चर्य हुआ था। उसने अपनी मां से पूछा था, "मम्मी, गोलिया कहां छे आयी?"

"बाजार से!" मां और क्या उत्तर देती।

बस, उस दिन से उसकी एक ही रट थी, "पापा, मेरी गोलिया लाओ।"

महीने की आखिरी तारीखें थीं। जेब में कुछ पैसे बस के किराये भर के थे। इतने में गुड़िया लायी भी जाये तो कैसे? जब मैं सुबह दफ्तर जाने के लिए कपड़े पहनता तो रीमा दौड़ कर मेरे पास आती और पैरों से लिपट कर गुडिया की फर्माइश करती, "पापा, गोलिया लाओ।"

"आज जरूर लाऊंगा बिटिया" कह कर मैं [illegible] वायदा करता और शाम को कपड़े उतारते समय जब रीमा पूछती "पापा गुड़िया लाये" तो मेरी हालत ठीक उस बेबस कर्जदार जैसी होती जो महाजन से नित्य झूठा वायदा करता है। मैं भी रीमा से कहता, "कल जरूर लेता आऊंगा।"

लेकिन मैं जानता था कि मेरे कथन में कितनी सच्चाई है। पहली तारीख से पहले गुड़िया लाना मेरे लिए संभव नहीं है। एक दिन सुबह जब मैं दफ्तर के लिए तैयार हो रहा था कि रीमा फ्रॉक का पल्ला समेटे मेरे पास आयी और बोली, "पापा, पैछे लो। मेली गोलिया लाओ।"

उसने नूरजहां के कबूतर उड़ा देने की तरह मासूमियत से पल्ला खोल कर दिया और झट से कितने ही दस-पांच के सिक्के फर्श पर बिखर गये। ये वही सिक्के थे, जो कभी-कभार मैं उसे दफ्तर जाते समय दे दिया करता था और वह मिट्टी की काली गोलक में जमा करती थी। मेरी रोज की वायदा खिलाफी से तंग हो कर उसकी मम्मी ने आज गोलक तोड़ कर उसे गुड़िया मंगाने के लिए पैसे दिये थे। मेरी आंखें भर आयीं। मैंने उसके कोमल कपोलों को थपथपाया और पैसे बिना गिने समेट कर जेब में डाल लिये। सारे रास्ते बस में बैठा सोचता रहा कि शाम को लौटते समय गुड़िया अवश्य खरीदूंगा।

दिन में जब भी किसी चीज के लिए जेब में हाथ डालता तो रीमा के सिक्के मेरी उंगलियां छूकर गुड़िया खरीदने की याद ताजा करा देते। और आखिर दफ्तर का समय समाप्त हुआ और मैं चांदनी चौक की ओर पैदल ही चल दिया। शाम को चांदनी चौक में खासा मेला लग जाता है। पटरियों पर दुकानें सज जाती हैं। मैंने एक खिलौने वाले की दुकान पर गुड़िया देखनी शुरू की ही थी कि मैंने देखा, मेरा बचपन का साथी गजेंद्र मेरे पास खड़ा गुड़िया पसंद कर रहा है। उसे गुडिया पसंद आ गयी। उसने दुकानदार को मुंह-मांगे दाम बीस रुपये थमा कर गुडिया को डिब्बे में बंद करने को कहा। एकाएक उसकी निगाह मुझ पर पड़ी और तपाक से मेरी ओर हाथ बढ़ाते हुए वह बोला, "नमस्कार! गुड़िया खरीद रहे हो?"

"नहीं तो, देख रहा था।" मैंने उसका बढ़ा हाथ थामते हुए झूठ बोल दिया। सच बात तो यह थी कि मुझे अपने दोस्त के सामने दो ढाई रुपये की गुडिया खरीदते हुए शर्म महसूस होने लगी थी। मैंने उससे पूछा, "दिल्ली कब आये? तुम तो कानपुर में थे।"

"बीस-पच्चीस दिन पहले आया हूं। कानपुर से ट्रांसफर करा लिया है।"

उसने बताया। तब तक दुकानदार ने गुड़िया बांध कर उसके हाथ में थमा दी और हम बातें करते हुए निकट के एक रेस्तरां में चले गये। बाहर निकले तो रीमा के पैसों में से केवल पैंतीस पैसे बचे थे। हम कई वर्ष बाद मिले थे, इसलिए दोस्त को समोसे-चाय खिलाने-पिलाने में सारे पैसे खर्च हो गये थे।

अब घर की ओर मेरे पैर न उठ रहे थे। गुड़िया न मिलने पर रीमा का उदासी-भरा चेहरा मेरी आंखों में घूम रहा था और कानों में वही रोज वाला प्रश्न गूंज रहा था, "पापा गोलिया लाये?"

मुझे लग रहा था, मानो रीमा की गुड़िया मेरे पेट में पहुंच गयी है। क्या जवाब दूंगा रीमा को? मैं रास्ते में एक-दो जगह बेमतलब रुका ताकि देर से घर पहुंचूं और रीमा सोयी मिले। लेकिन जब मैं घर पहुंचा तो रीमा मेरा इंतजार करती मिली। वही प्रश्न। उसकी महीन तथा तोतली आवाज मेरे कानों से आ टकरायी, "पापा गोलिया लाये?"

मैं चुप रहा। उसने फिर अपना प्रश्न दोहराया और मैं गुमसुम बना रहा। पत्नी समझ गयी कि जरूर दाल में काला है। उसने पूछा तो मैंने गजेंद्र के मिलने की पूरी बात बता दी। पत्नी का चेहरा भी उतर गया। रीमा भी अपनी बात का उत्तर न पाकर उदास हो गयी। मैं अपराधी-सा हाथ-पैर धोने नल पर चला गया।

उस दिन के बाद रीमा ने गुड़िया की फरमाइश बंद कर दी। वह दिन-भर संतराम की गुड़िया से खेलती। सारे दिन भूख-प्यास भूली रहती। यहां तक कि रात को उसकी मां बड़ी मुश्किल से उसे अपने कमरे में लाती। किसी-किसी दिन तो सोती उठा कर लाना पड़ता और जैसे ही अगला दिन होता और संतराम के किवाड़ खुलते, रीमा सीधी उसके कमरे में पहुंच जाती और लगती गुड़िया से तरह-तरह की बातें करने।

एक दिन मैं दफ्तर से लौटा तो समझते देर न लगी कि आज कोई बुरी घटना घटी है। रीमा सोयी पड़ी थी। वह सोती-सोती बीच-बीच में सुबक रही थी। पत्नी भी चुप थी। मैंने डिब्बा मेज पर रखकर जूता उतारते हुए पूछा, "क्या बात है? रीमा इतनी जल्दी क्यों सो गयी?"

"कितनी बार कहा कि एक गुड़िया ला दो। पर आप तो सुनते ही नहीं। संतराम जी की गुड्डी रो रही थी। रीमा ने उसे उठाना चाहा तो संभल न पायी। गुड्डी नीचे गिर गयी। बस उसकी मां ने रीमा को ऐसा खींचकर थप्पड़ मारा कि पांचों उंगलियां उसके गाल पर उभर आयीं।" पत्नी ने शाम को घटी घटना का ब्योरा दिया।

हू! कर मैंने डिब्बे की ओर इशारा किया। बोला, पूरे बीस रुपये की गुड़िया है। अपने दफ्तर के खन्ना से उधार लेकर आया हूं। पहली तारीख को लौटा देंगे। मुझे आशा न थी कि संतराम की पत्नी इतनी कठोर भी हो सकती है।'' मैंने रीमा के ऊपर झुक कर देखा। उसके गाल पर उंगलियों के साफ निशान बने थे।

अगले दिन रीमा सोकर उठी तो गुड़िया पाकर फूली न समायी। चाबी भरने पर गुड़िया बोलती है, तो उससे वह प्यारी-प्यारी बातें करती है। सारा दिन उसे गोद में उठाये फिरती। लेकिन अब वह बाबू संतराम के कमरे में झांकती तक नहीं।

कथा एक शेखचिल्ली की

यह जो नन्ही सीमा है न, अपनी बिटिया, बड़ी तेज है। लाल मिर्च-सी। मैं दफ्तर से लौटता हूं तो पैरों की पैंजनियां झनकारती ठुमकती हुई मेरे पैरों से आ लिपटती और अपनी भेंट-पूजा लिये बिना पिंड नहीं छोड़ती। कभी बिस्कुट तो कभी टाफी। कभी केले तो कभी अंगूर। यानी सुबह दफ्तर जाने से पहले वह अपनी फरमाइश पेश कर देती है और शाम को वसूलना नहीं भूलती। उसका आग्रह इतने भोलेपन से भरा होता है कि लौटते समय मैं घर की अन्य चीजें खरीदना भूल सकता हूं, किंतु उसकी मांग की चीजों को कभी नहीं भूल पाता।

खाना खाने के बाद उसकी दूसरी फरमाइश होती है कहानी सुनाने की। सो आज भी वह कल्ले में टाफी ठूंसे हुए बोली, "पापा, कहानी छुनाओ।"

मैंने उसे अपने बराबर लिटा कर कहानी कहना शुरू किया, "एक था शेखचिल्ली। और वह हुंकारा देने लगी, "हूं...पापा, शेखचिल्ली कौन होता है?" उसने बड़ी मासूमियत से पूछा। चक्कर में पड़ गया मैं। इस अबोध बालिका को कैसे समझाऊं कि शेखचिल्ली कौन होता है। मैंने जरा खीझ कर कहा, "चुपचाप कहानी सुनो, वरना मैं नहीं सुनाऊंगा।"

"अच्छा छुनाओ, अब नईं बोलूंगी।" उसने प्यार से अपना नन्हा हाथ मेरे सीने पर टेक दिया। मैंने आगे कथा शुरू की, "एक दिन उसे कहीं से ढेर सारी सरसों मिली। वह दौड़ा-दौड़ा तेली के यहां गया और सरसों का तेल निकलवा लाया। फिर कुप्पी में तेल भर कर वह सोचने लगा, तेल बेच कर जो पैसे मिलेंगे, उनसे एक मुर्गी खरीदूंगा। मुर्गी अंडे देगी। अंडों से बच्चे निकलेंगे। फिर वे अंडे देंगे। इस प्रकार बहुत सारी मुर्गियां हो जायेंगी। उन्हें बेच कर बकरी लूंगा। बकरी के भी बच्चे होंगे और उन्हें बेच कर गाय लाऊंगा। गाय का बछड़ा होगा, जो बढ़िया बैल बनेगा। उसके बेचने से काफी रुपये मिलेंगे। उन रुपयों से एक बढ़िया भैंस लूंगा। उसका दूध बेचूंगा। फिर दूसरी भैंस मोल लूंगा। इस तरह बहुत बड़ी डेरी खोल लूंगा। खूब दूध बिकेगा। जब मेरे पास ढेर सारे रुपये हो

जायेगे तो एक खूबसूरत पक्का मकान बनाऊंगा। फिर किसी सुन्दर लड़की से ब्याह करूंगा। कुछ दिन बाद घर बच्चों से भर जायेगा। वे मुझसे नई-नई चीजों की फरमाइश करेंगे तो मैं उन्हें जोरों से धमकाऊंगा—"भागो यहां से।"

जैसे ही उसने गर्दन झटक कर बच्चों को धमकाने का अभिनय किया तेल की कुप्पी दूर जा गिरी और सारा तेल बिखर गया। वह रोता-कलपता हुआ गाव की ओर लौट चला। रास्ते में जो भी उससे रोने का कारण पूछता, वह बस इतना उत्तर देता, "हाय मेरा बसा-बसाया घर उजड़ गया।"

सीमा ने हुंकारा भरना बंद कर दिया था। वह बेसुध सोयी पड़ी थी। उसका हाथ धीरे से अपने सीने से उतार कर मैं अनिल की अलमारी की ओर बढ़ गया।

अनिल ने आठवीं कक्षा की परीक्षा दी थी। उसके सभी पर्चे अच्छे हुए थे। इस बार गरमी की छुट्टियों में उसका गांव जाने का विचार न था। वहां रहकर दोस्तों के साथ आवारागर्दी करने के सिवा उसे दूसरा काम भी न दीखता था। बस उसने छुट्टियों में कोई काम करने का निर्णय किया। उसका एक गहरा दोस्त था राजेन्द्र। जब राजेन्द्र को उसके गांव न जाकर कोई काम करने की बात का पता चला तो उसने अपने पिता जी से कहकर अपने कारखाने में उसकी नौकरी लगवा दी। अनिल ने दो महीने में पूरे दो सौ रुपये कमाये।

रुपयों से अनिल की जेब गरम थी। वह घर वालों की निगाह बचा कर दिन-भर में चार-पांच बार रुपये गिनता। उसकी मां ने जानबूझ कर उससे रुपये लेने से इन्कार कर दिया था। उसका मत था कि अनिल अब सयाना होने लगा है। देखें, वह अपना कमाया धन कैसे खर्च करता है। अनिल कागज पर रुपये खर्च करने का हिसाब फैलाता, या सोचता, पिताजी से कहकर एक साइकिल खरीदूंगा। लेकिन दूसरे क्षण ही विचार बदल जाता। वह मन ही मन कहता साइकिल तो पिता जी ले देंगे। मैं अपने रुपये क्यों दूं? क्यों न एक घड़ी खरीदी जाये। स्कूल समय पर पहुंचने के लिए घड़ी होना जरूरी है। लेकिन अगले क्षण ही उसे पिता जी की बात याद आती, यदि वह इस वर्ष अपनी कक्षा में प्रथम आयेगा तो उसे वह इनाम में घड़ी ले देंगे।

उसने घड़ी-साइकिल का विचार छोड़ दिया। सोचा, क्यों न वह अपने लिए टेरीकॉट के कपड़े बनवा ले? उसका साथी राजेन्द्र कितने अच्छे कपड़े पहन कर उसके घर आता है और उसके पास सिर्फ एक पैंट-कमीज है, वह भी सूती। लेकिन मन ने गवाही नहीं दी। जब घर में सबके लिए इकट्ठे कपड़े आते

हैं तो उसके लिए भी आयेंगे भला क्यों बेकार में पैसे खराब करने की क्या तुक है बस उसने आखिरी निर्णय किया कि उसे रुपये अपने स्वास्थ्य और शौक पर खर्च करने चाहिए उसने एक पर्चे पर हिसाब लिखा बादाम दो किलो पचास रुपये। देशी घी पचास रुपये। उसे संगीत का शौक था। इसलिए एक बांसुरी दस रुपये और बैंजो पच्चीस का भी हिसाब लिखा गया। शेष धन सैर सपाटे और क्रिकेट के सामान पर खर्च करने की योजना बनायी।

अभी स्कूल खुलने में एक सप्ताह की देरी थी। उसने अपने साथियों के साथ ओखला में पिकनिक करने का कार्यक्रम बनाया। निश्चित दिन दस लड़कों की टोली ओखला गयी। टोली दो भागों में बंट गयी और बारी-बारी से यमुना स्नान का प्रोग्राम बनाया गया, ताकि एक लड़का टोली के सामान के पास रहे। पहली टोली के लड़के नहा कर वापस आये। फिर अनिल वाली टोली नहाने गयी। नहाने के बाद वे लोग भी लौट आये और सब मिल कर साथ लाया भोजन करने लगे। एकाएक अनिल को रुपयों का ध्यान आया। वह लड़कों पर रोब गांठने के लिए घर से सारे रुपये साथ लाया था। उसने रास्ते में एक-दो बार जेब से नोट निकाल कर रुपयों की झलकी अपने साथियों को दी थी। जब वह नहाने गया था तो नोटों को अपने कपड़ों में छिपा कर वहीं छोड़ गया था।

नोटों का ध्यान आते ही उसके मुंह का कौर मुंह में रह गया। वह हड़बड़ा कर खड़ा हो गया। उसने पैंट की हिप पाकिट में हाथ डाला। रुपये गायब थे। फिर उसने अपनी एक-एक जेब देख डाली। सारा सामान उथल-पुथल कर दिया। मगर रुपये नहीं मिले। किस पर शक करे? दोस्ती टूटने का भय। पिकनिक का सारा मजा किरकिरा हो गया।

वे घर लौट आये। अनिल के सारे सपने धराशायी हो गये। उसने रुपये खोने की बात अपनी मां को बता दी और तबियत खराब होने का बहाना बनाकर दूसरे कमरे में जाकर सो गया। मुझे 'पराग' के लिए कहानी लिखनी थी। कागज खत्म होने के कारण मैंने अनिल की पुरानी कापियों से कुछ पन्ने निकालने की जरूरत समझी थी। जैसे ही मैंने एक कापी निकाल कर उसके पन्ने पलटे, अनिल का लिखा हुआ हिसाब मिल गया। पूरे दो सौ रुपये का हिसाब। मुझे हँसी आ गयी और उसकी मां को हिसाब दिखाने लगा तो उसने हँसते हुए रुपयों के खो जाने की बात मुझे बता दी। मेरे मुंह से बेसाख्ता निकल गया, "शेखचिल्ली!" पर रुपये खो जाने का दुख मुझे भी था।

मंगलू की भक्ति

मंगलू का गांव गंगा के किनारे बसा था। गंगा के उस पार घना जंगल था और जगल में भगवान शिव का प्राचीन मंदिर था। मंदिर का पुजारी उसके गांव का पंडित मुरलीधर था।

मंगलू के मां-बाप बहुत गरीब थे। इसलिए चाह कर भी वह स्कूल न जा सका और घर की आमदनी बढ़ाने में उसे बाप की सहायता के लिए गांव के पशु चराने का काम सौंपा गया। वह दिन की पहली किरण के साथ गाय-भैंसों को गांव से बाहर इकट्ठा करता और फिर सारे दिन गंगा के खादर में उन्हें चराता।

एक दिन वह गंगा पार मंदिर के पास अपने पशु चरा रहा था। आरती का समय हो गया। घंटे-घड़ियाल बजने लगे। पशुओं को चरता छोड़ वह मंदिर में जाकर आरती में शामिल हो गया। वह सबसे पीछे खड़ा था। एकाएक पंडित मुरलीधर की निगाह उस पर गयी तो वह क्रोधित हो उठा। उसने मंगलू को धमकाते हुए मंदिर से बाहर निकाल दिया—"भाग यहां से! मंदिर को अपवित्र कर दिया।"

मंगलू मन मार कर रह गया। उसका वश चलता तो पुजारी को मजा चखा देता। लेकिन वह करता क्या, बच्चा ही तो था।

गांव में एक बार महात्मा जी आये थे। उनका प्रवचन सुनने वह भी गया था। महात्मा ने कहा था, "बच्चे भगवान का रूप होते हैं।"

लेकिन आज भगवान ने उसकी सहायता क्यों नहीं की? वह भी तो उसका रूप है। उसे पुजारी और भगवान—दोनों से नफरत हो गयी। वह मंदिर से थोडी दूर हट कर बैठ गया और पुजारी तथा भक्तजनों की वहां से जाने की प्रतीक्षा करने लगा। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वह आज भगवान से निबट कर ही घर जायेगा।

आरती समाप्त होने के बाद सब लोग गांव चले गये। वह उठा और मंदिर मे मूर्ति के सामने अकड़ कर जा खड़ा हुआ, बोला, "क्यों भगवान, यही न्याय है तेरा! मेरा अपमान हुआ और तू चुपचाप देखता रहा।"

भला मूर्ति क्या बोलती? लेकिन मंगलू अपनी जिद पर अड़ गया, "चुप क्यों हो? बोलोगे नहीं, तो तुम्हें मारूंगा।"

आर अपना बात का उत्तर न पा उसने भगवान को खींच कर ढेला मारा और वहा से चलता हुआ बोला कान खोल कर सुन लो जब तक नहीं बोलोगे, म मारना बंद नहीं करूगा।''

उस दिन के बाद मंगलू नियमित रूप से मंदिर जाता और वही प्रश्न करता। जवाब न मिलने पर मूर्ति को ढेला मार कर चला जाता।

धीरे-धीरे वर्षा ऋतु आ गयी। गंगा में भयंकर बाढ़ आ गयी। जिधर देखो पानी ही पानी। पुजारी और भक्तजनों ने मंदिर जाना बंद कर दिया। फुफकारती गगा में जानबूझ कर कौन डूब कर मरे! किन्तु समय होते ही मंगलू को चैन कहां? उसने तो भगवान से बदला लेने और अपनी बात का उत्तर पाने की कसम खायी थी। कसम को कैसे भंग कर दे। भगवान से हार क्यों मान ले। महात्मा जी ने अपने प्रवचन में यह भी तो कहा था कि भगवान भक्तों के वश में होते है।

वह जान हथेली पर रख कर गंगा में कूद गया। कैसे और कब गंगा पार कर ली, उसे तनिक भी ध्यान न था। उसका ध्यान तो सिर्फ मूर्ति पर जमा था। कब गंगा पार हो, कब अपना काम पूरा कर घर लौटे।

पार होकर वह सीधा मंदिर पहुंचा और मूर्ति के सामने विनम्र होकर बोला, ''भगवान क्षमा करना। आज थोड़ी देर हो गयी है। गंगा में बाढ़ आयी है न।''

और फिर पहले की तरह जिद्द करने लगा, ''देख भगवान, आज तो तुझे बोलना ही पड़ेगा। आज मारने के लिए मुझे ढेला भी नहीं मिला। सारी जमीन गीली हो गयी है न। और तू न बोला तो मैं तुझे उठा कर जमीन पर दे मारूंगा। और फिर गंगा में फेंक आऊंगा।''

भगवान के होंठ तब भी न हिले, तो उसने मूर्ति को उसके स्थान से उठा लिया और जोरों से धरती पर पटक दिया। मूर्ति पटकते ही सारा मंदिर जगमग हो गया। उसने ऐसा प्रकाश कभी न देखा था। मूर्ति उसके हाथ से छूट कर अपने स्थान पर जा बिराजी। वह सजीव हो उठी थी। उसके होंठों पर मंद-मंद मुसकान फैली थी। मंगलू हक्का-बक्का रह गया। डर के मारे उसकी चीख निकल गयी। भगवान बोले, ''डरो नहीं, पुत्र! हम तुम्हारी सच्ची लगन से बहुत प्रसन्न हुए। ऐसी लगन वाले ही मुझे पा सकते हैं। पुजारी और भक्त सब मेरी दिखावटी पूजा करते थे। मैं वरदान देता हूं कि तुम गरीब नहीं रहोगे और भविष्य में इस मंदिर का पुजारी भी तुम्हें बनाया जायेगा।''

इसके बाद मंदिर फिर वैसा ही हो गया। पत्थर की मूर्ति अपनी जगह पहले की तरह शांत और अचल खड़ी थी। मंगलू ने गद्‌गद हो आंखें बंद कर लीं। उसने भगवान के चरणों में सिर झुका दिया।

आजादी का नन्हा सिपाही

यद्यपि मोटर और रेलगाड़ी का युग था। तो भी न जाने क्यों गांव वाले अपनी बैलगाड़ी में सफर करना पसन्द करते थे। हां, सफर लम्बा हुआ तो मजबूरी थी मोटर अथवा रेलगाड़ी में यात्रा करने की।

मैं अपनी मां के साथ ननिहाल जा रहा था। गर्मी के दिन थे। रास्ते में मुजफ्फरनगर शहर से गुजरना था। शहर के बाहर एक मंदिर के पास शहतूत के पेड के नीचे हमारी बैलगाड़ी रुक गयी। हमने खाना खाया और मंदिर के कुएं से पानी पिया। हमारा कोचवान शहतूत के नीचे चादर बिछा कर आराम करने लगा। मां बैलगाड़ी में बैठी रही। वह मुझे जबरन गाड़ी में बिठाये थी। मोटर गाड़ियों के डर से वह मुझे नीचे सड़क के किनारे खेलने नहीं देती थी; थोड़ी देर में मां को झपकी आ गयी, और अगले क्षण मैं सड़क के किनारे खड़ा था।

सड़क पर मोटर और साइकिलों का तांता लगा था। पीं पीं करती मोटरें मेरे सामने से गुजरतीं तो मेरे नथुनों में पेट्रोल की अजीब सी गंध भर जाती। मैंने यह सब अपने छोटे-से जीवन में पहली बार देखा था। हां, बुआ जी ने मेरे लिए जो खिलौने भेजे थे, उनमें एक नन्ही-सी कार जरूर देखी थी, चाबी से चलती थी। लेकिन यहां सचमुच की भूरी, सलेटी और काली कारें दौड़ती देख कर मुझे बडा आश्चर्य हो रहा था।

मैं कितनी ही देर तक सड़क की इस हलचल को ध्यान से देखता रहा। एकाएक मुझे सामने से गहरे हरे रंग की मोटर आती दिखायी दी। सब से आगे वाली मोटर पर झंडी लगी थी। ड्राइवर के बराबर ऊपर छत में एक रोबदार आदमी गाड़ी के रंग जैसे कपड़े पहने आधा दिखायी दे रहा था। पीछे-पीछे कई वैसी ही गाड़ियां आ कर रुक गयीं। सभी गाड़ियों में एक से कपड़े पहने आदमी भरे थे और उनके कन्धों पर बन्दूकें (रायफल) टंगी थीं। सबसे पीछे वाली गाड़ी में से उतरने वाले लोग एकदम भूरे थे, गाजर जैसे रंग के। मुझे वे बड़े अजीब लग रहे थे। इतने सफेद आदमी मैंने पहले कभी नहीं देखे थे।

गोर पकड़ ले जायंगे   कहते हुए हडबड़ायों सो मा मुझ गादी में उठा कर बैलगाडी म ले गयी कोचवान भी कुछ घबराया सा था मा के बैठते ही उसने बैल हांक दिये। मैं कुछ समझ न पाया। आखिर मां और कोचवान इन लोगों को देख कर क्यों डर गये थे? ये लाल आदमी कौन हैं और मुझे क्यों पकड़ेंगे?

मैंने उत्सुकता प्रकट की—''मां, ये मोटर वाले कौन थे?''

''फौजी।''

''और ये लाल-लाल?''

''गोरे थे?''

''गोरे कौन होते हैं?''

''विलायत में रहते हैं और यहां राज करने आये हैं।''

मेरी समझ में मां की बात नहीं आयी। मैं और आगे सवाल करता कि मां ने डपटते हुए कहा, ''चुप रह, नहीं तो गोरों को बुला कर पकड़वा दूंगी, समझा। गोरे बड़े खराब होते हैं। बच्चों और औरतों को पकड़ लेते हैं।''

''फिर तो मां तुझे भी पकड़ेंगे।'' मैंने मासूमियत से कहा। मां और कोचवान हँस पड़े। मेरी मां ने जो भी गोरों के बारे में बताया, मैंने सही मान लिया। मुझे गोरों से नफरत हो गयी।

हमारे स्कूल में 'तुम्हीं हो माता, पिता तुम्हीं हो' प्रार्थना गायी जाती थी। कुछ दिन बाद उसकी जगह नयी प्रार्थना 'विश्व विजयी तिरंगा प्यारा' गायी जाने लगी। शांति-पाठ से पहले नारे लगाये जाते—'इन्कलाब....जिन्दाबाद, भारत माता की...जय, महात्मा गांधी....जिन्दाबाद।'' हर रविवार को प्रभात फेरी लगायी जाती। सब से आगे एक लड़का तिरंगा झण्डा लिये होता। उसके पीछे 'प्रभाती' गाने वाली भगवती और रामो होतीं और उनके पीछे हम बच्चे दो-दो की पंक्तियों में उनकी गायी प्रार्थना को दोहराते चलते।

इतना हंगामा होने के बाद अपनी बाल बुद्धि में सिर्फ इतनी बात आयी थी कि अंग्रेज बुरे हैं और उन्हें देश से निकालना है।

हमारी प्राथमिक पाठशाला हमारे गांव के मास्टर शुगनचन्द शर्मा की चौपाल में चलती थी। उन्होंने गांधी जी से प्रभावित होकर नौकरी से त्यागपत्र दे दिया था और आजादी की लड़ाई में शामिल हो गये थे। उन्हीं के प्रभाव से हमारे गुरु जी ने हम बच्चों से प्रभात-फेरियां लगवानी शुरू की थीं।

सर्दियों की रात थी। हम चौथी कक्षा के बच्चे पाठशाला में गुरु से पढ़ा करते थे। मास्टर शुगनचन्द शर्मा खद्दर का कुर्ता, धोती, टोपी पहने और गरम लोई लपेटे आये। वह काफी देर तक गुरु जी से राजनीति पर बातें करते रहे। हम सब बच्चे मिट्टी के तेल की ढिबरी बीच में रखे पिछला काम दोहराते रहे। दस बजे छुट्टी होने से पहले शुगनचन्द जी बच्चों से बोले, ''बच्चो! अगर कोई हमारे तिरंगे का अपमान करे तो तुम क्या करोगे?''

सब बच्चे चुप रहे, लेकिन मेरे मुंह से अपने आप निकल गया—''हम जान दे देंगे, मगर अपने झण्डे की शान न जाने देंगे।''

पता नहीं किस प्रेरणा से मैं यह सब कह गया था।

''शाबाश!'' शुगनचन्द जी ने मेरी पीठ थपथपायी और बोले, ''जब हमारे बच्चों में इतना हौसला है तो कोई ताकत हमें आजाद होने से नहीं रोक सकती। अंग्रेजों को यहां से जाना ही पड़ेगा।''

अगस्त, सन् बयालीस के एक दिन गांव के शांत वातावरण में हलचल बढ़ गयी। स्कूल बंद था। सारे गांव के लोग स्कूल की ओर जा रहे थे। गांव में ढेर सारी पुलिस लेकर अंग्रेज कप्तान शुगनचन्द जी को गिरफ्तार करने आया था। मास्टर जी फूलों से लदे थे। वह हाथ में तिरंगा लिये थे। स्कूल का अहाता पुलिस और गांव वालों से खचाखच भरा था। थोड़ी-थोड़ी देर में भीड़ 'महात्मा गांधी जिन्दाबाद', 'भारत माता की जय' के नारे लगा रही थी।

मैं स्कूल की फसील पर चढ़ कर कौतूहलता से सारा दृश्य देख रहा था। अंग्रेज कप्तान शुगनचन्द जी को लेकर गाड़ी की ओर चला। उनके आगे पीछे पुलिस का घेरा था। शुगनचन्द जी झण्डा उठाये 'भारत माता की जय' कहते हुए मेरे पास से गुजरे तो आवेश में मेरे मुंह से जोरों का नारा निकला। 'अंग्रेजों का ..' 'नाश हो!' भीड़ ने पूरा किया।

तभी एक सिपाही क्रोध में भर कर मेरी ओर लपका। पर इसी समय मास्टर शुगनचन्द जी ने मेरे गाल थपथपाते हुए कहा, ''मेरे देश के नन्हे सिपाहियो, देश जरूर आजाद होगा। गोराशाही अब और न चलेगी।''

वह पुलिस की गाड़ी में बैठ गये। धूल उड़ाती गाड़ी आगे बढ़ गयी और मैं डबडबाई आंखों से उन्हें दूर होता देखता रहा। पर मेरी समझ में यह नहीं आ रहा था कि मां तो कहती थी कि गोरे बच्चों और औरतों को पकड़ते हैं, फिर वे मास्टर शुगनचन्द शर्मा को क्यों पकड़ कर ले गये?

रोशनी की लकीर

यह वह जगह है, जिसे लोग बस अड्डा कहते हैं। दिन भर लोगों का मेला लगा रहता है। विभिन्न प्रकार के लोग। देहाती, शहरी। बच्चे-बूढ़े। चोर-उचक्के। शरीफ-बदमाश। काम वाले, निठल्ले। और उनके साथ ढेरों वे लोग भी होते है, जो इस मेले की छोटी-छोटी आवश्यकताएं पूरी करते हैं। अखबार बेचने वाले, फेरी लगा कर फल बेचने वाले। चना कुरमुरा वाले। चाट-पकौड़ी वाले। पान-सिगरेट वाले। नीम-हकीम दाद-छाजन की दवा बेचने वाले। काजल-सुर्मा बेचने वाले। और इन सब पर नजर रखने वाले पुलिस के सिपाही भी अपना डंडा गैर-कानूनी ढंग से अंदर आने वाले रिक्शों की सीटों और हैंडिलों पर बजाते होते हैं। गर्ज यह है कि यह चलता-फिरता मेला मिनट-मिनट बाद लगता-उजड़ता रहता है। बसें आती हैं। भरती हैं। भाग जाती हैं। कहीं कोई ठहराव नहीं। हो भी क्यों? सभी को कहीं-न-कहीं जाना होता है। कुछ-न-कुछ बेचना होता है। सब चलते-फिरते नजर आते हैं। बसों के हार्न चीख-चीख कर जल्दी जाने वालों को बुलाते होते हैं।

हर रोज यही क्रम चलता। सवारियों को बसें चाहिए, बस वालों को धन चाहिए और बेचने वालों को ग्राहक चाहिए। इन बेचने वालों में रोज कई-कई पुराने चेहरे गायब हो जाते हैं और कई नये आ मिलते हैं। नये आने वालों पर पुराने हावी रहते हैं। इस बस में मैं बेचूंगा। तू उस बस में क्यों चढ़ा था? चखचखबाजी शुरू हो जाती है। कभी-कभी हाथापाई तक नौबत आ जाती है। कहीं से सिपाही आता दीख जाता है और वे माल उठा कर इधर-उधर बसों की आड़ में छिप जाते हैं।

इन्हीं लोगों में कई दिनों से दो नये चेहरे दिखायी पड़ रहे हैं। दोनों ही लड़कियां हैं। नाम है उनका नीला और नीना, और काम है माचिस बेचना। दोनों ही बड़ी सुघड़ बच्चियां हैं। सलीके वाली। बोलती हैं तो मुंह मे फूल बरसते हैं। जब नीना अपनी तोतली बोली में आवाज लगाती है, "माचिछ लोगे बाबूजी,

दछ-दछ पैछे माचिछ!'' तो न खरीदने वाले का हाथ भी जेब में चला जाता है।

नीना की उम्र है यही कोई छह साल। रंग का एकदम साफ और नाक नक्श अच्छे हैं। भरे-भरे शरीर पर फटा हुआ किन्तु साफ-सुथरा फ्रॉक और सुनहरे बालों में गुंथा लाल रिबन बड़ा भला लगता है। पैरों में टूटी प्लास्टिक की चप्पल जिन्हें ऊन के धागे से जोड़ कर पहनने लायक बनाया गया है। सच, बड़ी प्यारी बच्ची है। जापानी गुड़िया-सी। देखते ही प्यार आ जाता है।

नीला उसकी बड़ी बहन है, बिलकुल उसकी कापी। उम्र यही होगी नौ-दसेक साल। वह अड्डे में खड़ी एक खराब बस की छाया में बैठी रहती है। उसके पास एक थैला है। जिसमें माचिस भरी हैं। वह माचिस बेचने बस में नहीं चढ़ती और अपनी छोटी बहन नीना को माचिस बेचने भेजती है। शायद इसलिए कि उसे बच्ची समझ कर लोग तरस खायेंगे और माचिस खरीदेंगे। नीला की इस व्यावसायिक बुद्धि पर सचमुच प्यार आता है। वह अपने व्यवसाय के हथकंडे सीख गयी है। सोचता हूं, समय कितना बड़ा शिक्षक है, जो नन्हें बच्चों को भी समझदार बना देता है।

नीला और नीना के पिता बाबू जगमोहन किसी कारखाने में मामूली से क्लर्क थे। निहायत ईमानदार और मेहनती। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। जो कमाते थे, वह बूढ़ी मां के इलाज में लगा देते थे। उनकी मां कैंसर की पुरानी मरीज थी। सिर पर कर्ज का भार बढ़ता रहा। मां के मरने के एक वर्ष बाद वह तपेदिक से पीड़ित हो गये और नीला की मां शोभा के सिर पर कर्ज का भारी बोझ छोड़ कर उन्हें अनाथ बना गये। नीला तब तीसरी में पढ़ती थी और नीना ने सिर्फ स्कूल का दरवाजा देखा था।

बाबू जगमोहन के फंड का जो पैसा मिला, वह आधे से अधिक कर्ज वालों के यहां चला गया। शेष धन जो बचा उससे साल भर का खर्च बामुश्किल से चल पाया। बेचारी शोभा करे तो क्या करे? पढ़ी लिखी भी नहीं, जो कहीं नौकरी का जुगाड़ करने की कोशिश करती। सीना पिरोना भी वह न जानती थी। बस, उसके सामने दो ही रास्ते थे। मेहनत-मजदूरी करे या फिर दूसरा घर बसाये।

दूसरा घर! वह कल्पना मात्र से घबरा गयी। इन नन्ही नन्ही बच्चियों का क्या होगा? दूसरा पति उसके पहले पति के बच्चों को क्यों पालेगा? आदमी तोते, कबूतर और कुत्ते के बच्चों को तो पाल सकता है, लेकिन दूसरे आदमी के बच्चे नहीं पाल सकता। बस, उसने मेहनत-मजदूरी का रास्ता अपनाना ठीक

समझा वह अपनी बच्चियों को पढ़ा लिखा कर सलीके शऊर वाली बनायगी। जगमोहन बाबू की ये बच्चियां ही तो उसके पास जमा पूंजी में बची हैं उन्हे योग्य बनाना उसका कर्तव्य है

वह लोगों के घर बर्तन मांजती, कपड़े धोती, खाना बनाती और फर्श साफ करती। तब कहीं अस्सी–नब्बे रुपये जुटा पाती। इत्ते रुपयों से घर का खर्च बडी मुश्किल से चल पाता। बस उसने सोचा, स्कूल की छुट्टियों के दिनों में क्यों न नीला और नीना कोई छोटा–मोटा काम कर लिया करें। बड़े काम के लिए ज्यादा पैसे और अधिक समय चाहिए। फिर अपनी गांठ में कानी कौड़ी नहीं और न ही बच्चियां कोई बड़ा काम कर सकती हैं।

उसे सब से सस्ता काम माचिस बेचने का सूझा। वह अपनी एक मालकिन से पांच रुपये पेशगी ले आयी और थोक की दुकान से बच्चियों के लिए माचिसे खरीद लायी और पहले–पहले माचिसें कुछ कम बिकीं। हर काम तजुर्बा चाहता है और तब तजुर्बा बच्चियों को था नहीं। वे ग्राहक का ध्यान आकृष्ट करने मे लज्जा महसूसती थीं। लेकिन अब तो उनकी बुद्धि बनिया बुद्धि हो गयी थी। संगदिल ग्राहक भी नीना की आवाज से प्रभावित हुए बिना न रहता था। उसका आवाज लगाने का लहजा ही कुछ ऐसा था।

''माच्चिछ लोगे बाबू जी। छिल्फ दछ पैछे में। बाजाल छे लोगे तो पंदलह पैसे में मिलेगी। माचिस दछ–दछ पैछे।'' नीना की सुरीली आवाज सुन कर पुलिस वाला उधर आ धमका और लगा रोब झाड़ने, ''ऐ लड़की, भाग यहां से। किसी का सामान उठा कर भागेगी क्या?''

नीना के अहम को ठेस लगी । वह एक पल झिझकी और फिर शातिर हो गयी, बोली, ''हम चोल नहीं छाहेब। माचिछ बेचते हैं। भीख तो नहीं मांगते। चोल्नी नहीं कलते।''

सिपाही उसकी ओर लपका और वह बस की ओट में बैठी नीला की ओर दौड़ गयी। मेरे मस्तिष्क में रोशनी की एक लकीर–सी खिंच गयी। मैं आनन्द-विभोर हो गया। नन्ही–सी लड़की में कित्ता स्वाभिमान! जिस देश के बच्चे इतने स्वाभिमानी हैं, भला वह एक दिन कैसे सम्पन्न न होगा। मैंने हाथ के इशारे से सिपाही को बरज दिया कि उन्हें तंग न करे। मैं इस बस अड्डे का इंचार्ज हूं न। सिपाही मेरी बात मानेगा ही।

होली-मिलन

बात सिर्फ इतनी-सी थी कि राकेश ने मंजू की कापी से गणित के सवाल टीप लिये थे और नरेश ने इसकी शिकायत गणित की अध्यापिका से कर दी थी। गणित की अध्यापिका स्वभाव से जरा सख्त थी। उसने राकेश को पूरे घंटे खड़ा रहने की सजा दी। बस, यहीं से राकेश और नरेश की अनबन शुरू हो गयी। छुट्टी होने पर वे स्कूल से बाहर आये तो दोनों में काफी तू तू, मैं मैं हुई और अन्त में दोनों में कुट्टी हो गयी। धूप-छांव की तरह साथ रहने वाले दोस्त अलग अलग हो गये।

बात यहीं समाप्त नहीं हुई। एक दिन इतिहास के घंटे में अध्यापक ने पूछा "चन्द्रगुप्त मौर्य के काल को स्वर्णकाल क्यों कहते हैं?"

सारी कक्षा में सन्नाटा छा गया। किसी को याद न था कि चन्द्रगुप्त के काल स्वर्णकाल क्यों कहलाता है। जिन्हें उत्तर याद है उन्हें हाथ खड़ा करने को कहा गया, तो पूरी कक्षा में हाथ खड़ा करने वाला केवल राकेश था। अध्यापक के पूछने पर उसने सही-सही उत्तर दे दिया। अध्यापक जी को अन्य बच्चों पर बहुत गुस्सा आया और राकेश को आदेश दिया कि वह सब बच्चों को एक एक थप्पड़ लगाये।

राकेश ने हिचकते-हिचकते बच्चों को चपत लगानी शुरू की। जब वह चपत लगाता तो लगता, मानो वह उनकी कनपटियों को सहला रहा हो। लेकिन जैसे ही वह नरेश के पास पहुंचा, उसे गणित के सवालों की शिकायत वाली घटना याद आ गयी और उसने नरेश को ऐसा खींच कर चांटा मारा कि वह बिलबिला गया।

उस दिन के बाद से नरेश और राकेश पक्के दुश्मन हो गये। दोनों ने अलग-अलग दल बना लिये। स्कूल की छुट्टी होने के बाद जब-तब इन दोनों के दलों में मारपीट तक हो जाती।

बेचारी मंजु परेशान थी कि उन दोनों में कैसे सुलह करायी जाये। राकेश

आर नरेश दोनों उसकी बात न सुनते थे

मार्च का महीना आ गया होली के दिन राकेश और नरेश की टोलियों में होड़ लग गयी कि कौन बड़ी होली बनाता है। राकेश की टोली को नरेश की टोली के किसी बच्चे का कोई सामान हाथ आ जाता तो चट से होली मे ला डालती और अगर नरेश टोली के हाथ कोई चीज राकेश की टोली की लग जाती तो वह भी होली के पेट में पहुंच जाती। नतीजा यह हुआ कि रात को होली जली तो दोनों टोलियों का कितना ही घरेलू सामान होली में भस्म हो गया।

दोनों ओर के बच्चे प्रसन्न थे कि उन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को काफी नुकसान पहुंचा दिया है। मगर परेशान थी बेचारी मंजु, जो इस चिन्ता में लगी थी कि अपनी कक्षा के दो अच्छे साथियों में कैसे दोस्ती कराये। आखिर, उसे एक तरकीब सूझ आयी कि कल दुल्हैंडी है। क्यों न वह अपने घर पर बाल होली-मिलन उत्सव मनाये। सब बच्चों को अपने घर पर बुलाये। एक छोटी-सी दावत दी जाये और बाल-कविताओं और चुटकलों का कार्यक्रम रखा जाये। इसी उत्सव में राकेश और नरेश में दोस्ती करायी जाये। उसने अपनी मम्मी से सलाह ली तो वह बहुत खुश हुई। अगले दिन मंजु दावत और बाल होली-मिलन उत्सव मनाने का निमंत्रण देने राकेश तथा नरेश के घर चली गयी।

रंग-गुलाल खेलते हुए बच्चे मंजु के घर पहुंचे। मम्मी की सहायता से मंजु ने खाने की चीजें मेज पर पहले ही सजा दी थीं। सबसे पहले नरेश अपनी टोली के साथ पहुंचा। कुछ ही देर के बाद राकेश भी अपनी वानर सेना लिये आ धमका। बस, फिर क्या था, नरेश राकेश की टोली को देखते ही तन कर खड़ा हो गया और अपने दोस्तों से बोला, ''चलो रे, हमें किसी होली मिलन-विलन मे भाग नहीं लेना।''

उधर राकेश बरामदे में खड़ा कह रहा था, ''मंजु दीदी, यदि इसे यहां बुलाना था तो मुझे क्यों निमंत्रण दिया। मैं इसके साथ होली-मिलन में शामिल नहीं होऊंगा।''

सारा घर बच्चों की चिल्लपों से भर गया। बेचारी मंजु करे तो क्या करे। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वह उन्हें समझाने का प्रयत्न कर रही थी कि होली प्रेम-मिलन का त्योहार है। हम सबको मन-मुटाव भुला कर प्रेम से होली-मिलन उत्सव मनाना चाहिए। मगर उसकी सुनता कौन?

राकेश और नरेश अपनी-अपनी टोली के बच्चों को लेकर जाने लगे। तभी मंजु की मम्मी रसोईघर से बाहर आयी और बच्चों को रोकते हुए बोली, ''सब

बच्चे अन्दर चलो।

"आण्टी जी, हम अन्दर नहीं जायेंगे।" सारे बच्चों ने शोर मचाया।

"क्यों?" मंजु की मम्मी ने प्यार से पूछा।

दोनों टोलियों के बच्चों ने एक-दूसरे पर आरोप लगाने शुरू कर दिये। मंजु की मम्मी ने सबको चुप कराते हुए कहा, "अच्छे बच्चे बड़ों का कहना मानते हैं, शोर नहीं मचाते।"

बच्चे चुप हो गये और मम्मी की बात सुनने लगे। मम्मी बोली, "होली साल-भर का त्योहार है। जानते हो, इस त्योहार को क्यों मनाते हैं!"

किसी बच्चे को जवाब न सूझा। राकेश और नरेश गर्दन खुजाने लगे। उन्हें तो सिर्फ इतना ही पता था कि इस दिन एक-दूसरे पर रंग डालते हैं। मम्मी ने उन्हें यों चुप देख आगे कहना शुरू किया, "प्यारे बच्चो, होलिका-रूपी बुराई को होली में भस्म कर हमें प्यार से रहना चाहिए। यही इस त्योहार मनाने का महत्त्व है। मुझे मंजु ने सब बता दिया है कि राकेश और नरेश में काफी दिनों से अनबन है। यह बुरी बात है। अन्दर चल कर बैठो। मैं तुम दोनों की सुलह करा देती हूं।"

सारे बच्चे अन्दर चले गये। मंजु की मम्मी ने राकेश और नरेश के हाथ मिलवा दिये और सब बच्चों को मिठाइयों की शानदार दावत दी। इसके बाद होली-मिलन उत्सव मनाया गया। कई बच्चों ने प्यारी-प्यारी बाल कविताएं सुनायीं और कितनों ने हँसी से भरपूर चुटकले सुनाये। मंजु और उसकी सहेलियों ने कई प्रकार के स्वांग करके बच्चों का खूब मनोरंजन किया।

नीम का भूत

लड़ाई के दिन थे। दिन छिपते ही सारा शहर अंधेरे में डूब जाता था। घर-सड़कों की बत्तियां बंद। मोटर गाड़ियों तक की बत्ती जलाना मना था। नीना और उसके छोटे भाई बबलू को अंधेरे में नहाया शहर अजीब-सा लगता था।

गली के बच्चों को नया खेल मिल गया था। जैसे ही किसी घर में बत्ती टिमटिमाती दीखती, बच्चे शोर मचाते, 'बत्ती बंद करो।'

आज सबेरे ही गांव से तार आया था। नीना और बबलू की दादी मां सख्त बीमार थी। उनके पिता जी और माता जी को गांव जाना था। उधर नीना और बबलू की छमाही परीक्षा सिर पर थी। इसलिए उन्हें साथ ले जाना ठीक न समझ कर उनके पिता जी ने घर की नौकरानी शोभा को गांव से लौटने तक वहीं रहने को कहा और वे गांव चले गये।

दिन छिपा! फिर ब्लैक आउट हो गया। शोभा किसी काम से अपने घर गयी थी। वह बच्चों से कह गयी थी कि जल्दी ही लौट आयेगी, तब तक वे खिड़की और दरवाजे बंद कर टेबिल लैम्प जला लें और पढ़ाई करें।

शोभा के जाने के बाद वे कुछ देर तक पढ़ते रहे, लेकिन थोड़ी देर मे उनका मन उचट गया। किताबें मेज पर छोड़ वे बाहर बाल्कोनी में आ खड़े हुए और दूर तक फैले अंधेरे में डूबे शहर को देखने लगे। वे आपस में किसी फिल्म मे देखे रात के दृश्य की बात कर रहे थे।

उनकी कोठी से थोड़ी दूर पर चार-पांच पुराने नीम के पेड़ थे। दिन-भर उनकी छाया में बच्चे खेला करते थे। एकाएक नीना की चीख-सी निकल गयी, "बबलू, नीम पर भूत है।"

"कहां?" बबलू ने आंखें नीम के पेड़ पर गड़ा दीं। कहीं कुछ दिखायी न दे रहा था।

"अभी-अभी देखा था मैंने उसकी लाल आंख चमकी थी।" नीना ने उस पेड़ की ओर उंगली उठायी, जिस पर अभी कोई चीज चिंगारी-सी चमकती

दिखायी दी थी। जब वे गरमी की छुट्टियों में गांव जाया करते थे तो नानी मां उन्हें भूत-प्रेतों की कहानियां सुनाया करती थीं। नीना ने उन कहानियों में सुना था कि भूतों की आंखें दीये-सी जलती हैं और वे पेड़ों पर रहते हैं।

नीम के पेड़ पर फिर कोई चीज चमकी। इस बार बबलू को भी नजर दिखायी दी। उसका नन्हा-सा दिल जोरों से धड़कने लगा। लेकिन उसे याद आया कि कल ही तो उसने 'चकमक' पत्रिका में पढ़ा था कि भूत प्रेत कोई चीज नहीं होते, सिर्फ मन का वहम होता है। वह बोला, "दीदी, घबराओ नहीं। मै पापा जी की टार्च लाता हूं। सुना है, भूत रोशनी देख कर भाग जाते हैं।"

वह दौड़ कर पापा के कमरे से पांच सेल वाला टार्च उठा लाया। नीम पर जैसे ही वह चीज चमकी, उसने टार्च का बटन दबा दिया। सारा नीम रोशनी से नहा गया। उसने देखा, जहां वह चीज चमकी थी, वहां कोई आदमी बैठा बीड़ी पी रहा था। अपने ऊपर रोशनी पड़ते ही वह पेड़ के एक मोटे तने के पीछे छिपने की कोशिश करने लगा। दूर से सीटी बजी और कोई चिल्लाया, "टार्च कौन जला रहा है? बंद करो।"

सीटी बजाने वाला नागरिक सुरक्षा वार्ड का स्वयं सेवक था। वह उस समय गश्त लगा रहा था, ताकि कोई बत्ती न जलाये। बबलू ने फौरन टार्च बंद कर ली। स्वयं-सेवक दूसरी गली में घूम गया। बबलू को याद आया, स्कूल में उनके टीचर ने बताया था क दुश्मन के जासूस शहर में छिपे हुए हैं। उन्हें पकड़वाने में हमें पुलिस की सहायता करनी चाहिए। बस, बबलू ने नीना से कहा, "दीदी, हमें जल्दी ही पुलिस को खबर देनी चाहिए। नीम पर भूत नहीं, दुश्मन का कोई जासूस छिपा है, जो हवाई हमले के समय दुश्मन के जहाजों को शहर का पता बतायेगा।"

नीना की बात समझ में आ गयी। वे फौरन पापा के कमरे में गये और फोन का चोंगा उठा कर फोन करने लगे। मगर पुलिस का नंबर तो उन्हें याद ही नहीं और डायरेक्टरी देखना उन्हें आता नहीं। अब क्या हो? देर हो गयी तो जासूस भाग जायेगा। बबलू बोला, "दीदी, तुम बाहर जाकर पेड़ पर निगाह रखो और मैं पुलिस स्टेशन जाता हूं। थोड़ी दूर ही तो है पुलिस स्टेशन।"

"नहीं, तुम अंधेरे में अकेले मत जाओ। शोभा आंटी को आ जाने दो।" नीना ने बबलू को रोकना चाहा।

"दीदी, शोभा आंटी न जाने कितनी देर में आयेंगी। तब तक वह भाग गया तो? तुम बिलकुल न घबराओ। मुझे डर नहीं लगता। मैं अभी गया और आया।"

कह कर बबलू बिना जूते पहने ही पुलिस स्टेशन की ओर दौड़ गया। जैसे ही वह चौराहे पर पहुंचा सामने से बत्ती बुझाये पुलिस की गश्त की गाड़ी आ गयी। उसने हाथ उठा कर गाड़ी रोकने का इशारा किया और चिल्लाया, "रोको, रोको।"

गाड़ी रुक गयी। खिड़की से मुंह निकाल कर इन्सपैक्टर ने बात पूछी तो उसने सारी घटना बता दी। इन्सपैक्टर ने खिड़की खोल कर उसे अपने पास बिठा लिया और ड्राइवर से बबलू के बताये स्थान की ओर चलने को कहा।

पुलिस ने नीम के पेड़ों को घेर लिया। इन्सपैक्टर ने हुक्म दिया, "पेड़ पर जो भी बैठा है, नीचे उतर आये। वरना पुलिस को मजबूरन गोली चलानी पड़ेगी।"

तभी उन्हें किसी बच्चे के चीखने की आवाज सुनायी दी। पुलिस वाले बबलू-सहित गाड़ी पर सवार होकर उधर ही भागे। थोड़ी दूर जाने के बाद ड्राइवर ने गाड़ी रोक दी। सड़क पर कोई चीज पड़ी थी। नीचे उतर कर देखा तो एक छोटी-सी लड़की थी। बबलू ने उसे फौरन पहचान लिया। उसके मुंह से चीख निकल गयी, "नीना, दीदी!"

"आप लोग उसे पकड़ो। वह सामने वाले नाले में घुसा है।" नीना ने अपने सिर से खून पोंछते हुए कहा।

पुलिस एक सिपाही और बबलू को नीना के पास छोड़ कर नाले की ओर बढ़ गयी। नीना ने बबलू को बताया कि जैसे ही वह पुलिस को बुलाने गया, वह आदमी पेड़ से उतर कर इधर-उधर छिपने की जगह ढूंढ़ने लगा। जब उसे कोई जगह न मिली तो वह नाले वाली सड़क पर चलने लगा। मैं भी कोठी से निकल कर उसका पीछा करने लगी, ताकि उसके छिपने की जगह का पता जान सकूं। जब वह इस जगह आया तो उसने पलट कर देखा। उसने मुझे अपने पीछे आते देख लिया और उसे मुझ पर पीछा करने का शक हो गया। बस, उसने सड़क के किनारे से पत्थर उठा कर मुझे मारा और दौड़ कर नाले में उतर गया।

नीना यह बता कर मूर्छित हो गयी। पुलिस ने नाले के पुल के नीचे से जासूस पकड़ लिया और नीना को अस्पताल में भरती करवा दिया। कुछ दिनों में नीना ठीक हो गयी। लड़ाई भी खत्म हो गयी। दुश्मन हार गया था। इस वर्ष के पुरस्कृत होने वाले साहसी बच्चों में नीना और बबलू का नाम देख कर उनके पिता जी फूले न समाये।

दीप से दीप जले

सारा स्कूल रंगीन पोस्टरों की वंदनवारों से सजा था। गांधी जी के साक्षरता दिवस मनाने की पूरी तैयारी थी। पोस्टरों पर दो दीये बने थे, जिन्हें एक, दूसरे से जलाया जाता दिखाया था। नीचे लिखा था—'दीये से दीये जलते अनेक।'

सफेद रंग के कपड़ों पर नीली सियाही से 'ज्ञान का प्रकाश हो, अविद्या का नाश हो!' जैसे बहुत-से नारे लिखे थे।

दिन की पहली किरण के साथ स्कूल का आंगन बच्चों की किलकारियों से गूंज उठा। सब बच्चे नये रंग-बिरंगे कपड़े पहने थे। दूर से देखने पर लगता था, मानो स्कूल के आंगन में वसंत ऋतु आ गयी हो और फूलों की क्यारियों मे खिले फूलों पर ढेर-सारी रंग-बिरंगी तितलियां मंडरा रही हों। बच्चों की उपस्थिति पूरी हो जाने पर अध्यापकों ने उन्हें दो-दो की पंक्तियों में खड़ा किया। सबसे आगे प्रभात-फेरी गाने वाले बच्चे थे। शेष बच्चों को उनके पीछे चलने को कहा गया। प्रभात-फेरी लगाते हुए उन्हें पास के गांव में जाना था। वहां हर बच्चे को कम-से-कम पांच गांव वालों को हस्ताक्षर बनाने सिखाने थे। प्रभात-फेरी शुरू हुई। अगले दो बच्चों ने गाना शुरू किया—"पढ़ो ऐ मेरे देश वालो, अविद्या को भारत से जल्दी निकालो।"

पीछे चलने वाले बच्चे भी उसी लय में गीत दोहराते चल दिये। गीत समाप्त हुआ। अगले बच्चों ने नारा लगाया—"इंकलाब..."

"जिंदाबाद।" पीछे वाले बच्चों ने जोश में पूरा किया।

"ज्ञान का प्रकाश हो।" फिर नारा गूंजा।

"अविद्या का नाश हो।" दूसरे बच्चों ने आकाश भेदा।

"भारत माता की..."

"जय।" सैकड़ों नन्हे कंठों ने एक साथ जय बोली।

गली-सड़कें पार कर काफिला गांव में पहुंचा। बच्चे गांव के अनपढ़ लोगों से हस्ताक्षर सीखने की प्रार्थना करते तो बूढ़े और प्रौढ़ हँस देते, कहते— "बचवा

बूढे तोते भी कहा पढत ह

ताऊ जी आप कोशिश तो करो सिखाने से सब आ जायेगा बच्चे कोमल स्वर म उन्हे समझाने का प्रयत्न करते। भोले-भाले बच्चों का प्यारा-प्यारा आग्रह भला वे कैसे न मानते! वे हुक्का पीना छोड़ कर अलाव से थोडा आगे सरक कर कहते, "ई बचवा का रोज कहत हैं। लो भइयन सिखा देव।"

वह पहली कक्षा के बच्चों की तरह हथेली से धरती साफ करते। बच्चे उनकी खुरदरी उंगली पकड़ कर उनको नाम लिखना सिखाते। दीपेश भी एक प्रौढ को उसके नाम का अक्षर-ज्ञान कराने में व्यस्त था। बार-बार उंगली पकड कर लिखवाने के बाद, जब दीपेश उससे लिखने को कहता तो वह कोई-न-कोई अक्षर भूल जाता अथवा गलत लिख देता। दीपेश प्यार से पुनः उंगली पकडता और कहता, "चाचा जी, ऐसे नहीं, ऐसे लिखते हैं।"

"ससुर मनई का पता।" वह मुंह पर उठी झाड़-सी मूंछों में मुसकराता हुआ कहता।

जैसे-जैसे समय बीत रहा था, दीपेश खीझने लगा था। उसे याद आ रहा था, ठीक ही तो कहते हैं—'बूढ़े तोते भी क्या पढ़ेंगे?' यदि इतनी मेहनत उसने अपनी उम्र के किसी बच्चे के साथ की होती तो वह अक्षर अवश्य याद कर लेता। फिर उसके नन्हे मस्तिष्क में सुरसुराहट-सी हुई—'इन लोगों ने नाम लिखना सीख ही लिया तो क्या पढ़े-लिखे हो जायेंगे? इससे तो हरेक बच्चा एक अनपढ़ को पढ़ाये। फिर वह दूसरे को पढ़ाये। इस प्रकार कितने सारे बच्चे पढ जायेंगे?'

ऐसा सोचते-सोचते उसने प्रौढ़ को नाम लिखना तो सिखा दिया। मगर उसने पक्का इरादा कर लिया कि आज से वह किसी ऐसे बच्चे को पढ़ायेगा, जो किसी कारण से स्कूल नहीं जाता।

दीपेश का दोस्त था रब्बी। रब्बी उसका पड़ोसी था। दोनों हम-उम्र। वे दोनों साथ-साथ खेला करते थे। रब्बी का बाप बचपन में उसे अनाथ बना गया था। वह एक कारखाने में काम करता था। शराब पीने की बुरी आदत थी उसे। जब वह मरा तो घर के बर्तन-भांडे तक बिक गये थे। रब्बी की मां पास-पड़ोस में काम करके दिन काट रही थी। वह दीपेश के घर भी बर्तन मांजने आती थी। रब्बी उसके साथ आया करता था। जब वह काम में लगी होती तो रब्बी और दीपेश खेलने लगते। उन दोनों में यों दोस्ती हो गयी थी।

दीपेश ने रब्बी को पढ़ाने का निश्चय किया। वह रब्बी को उसके घर से

बुला लाया और अपने बस्ते से स्लेट कलम निकाल कर सामने [illegible] गया। वह अंधेरा होने तक रब्बी को बारह खड़ी सिखाता रहा। रब्बी [illegible] कि जो अक्षर दीपेश उसे सिखाता वह एक बार में याद कर लेता। [illegible] बाद स्लेट पर अभ्यास कर लेने के बाद लिखना सीख जाता, दीपेश [illegible] मेहनत की सफलता पर फूला न समा रहा था।

अंधेरा इतना घना हो चला कि स्लेट पर लिखे अक्षर साफ दिखाई न पड़ते थे, मगर वह दोनों लगन के धुनी अपने काम में व्यस्त थे। उधर दीपेश को काफी देर से गायब देख मम्मी को चिंता हुई। खाना तैयार हो चुका था और दीपेश के पिता लक्ष्मी बाबू का घर लौटने का समय हो रहा था। मम्मी ने पुकारा "दीपेश! दीपेश बेटे!!"

"आया मम्मी।" दीपेश ने मम्मी की आवाज सुनकर उत्तर दिया।

"दीपेश भइया, जल्दी चलो। मम्मी नाराज होंगी।" रब्बी घबरा गया था। वह सोच रहा था कि कहीं उसके कारण दीपेश को मम्मी की डांट [illegible] न सुननी पड़े।

"अरे घबराते क्यों हो! हम कोई नुकसान तो कर नहीं रहे, जो मम्मी नाराज होंगी। जब वह तुम्हें पढ़ाने की बात सुनेंगी तो बहुत खुश होंगी।" दीपेश ने स्लेट-कलम उठाकर चलते हुए रब्बी का हौसला बढ़ाया।

और सचमुच ही जब नीचे जाकर दीपेश ने मम्मी से रब्बी को पढ़ाने की बात कही तो वह हँस पड़ी, उसकी पीठ थपथपा कर बोलीं "मेरे बेटे, पहले तुम तो पढ़ लो।"

"मम्मी मैं पढ़ूंगा और रब्बी को पढ़ाऊंगा भी।" उसके स्वर में गहरी दृढ़ता थी।"

"अच्छा, अच्छा। अब खाना खा ले।" मां ने बच्चे की बात मान कर उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया।

दीपेश तो अपनी धुन का पक्का था। वह उस दिन के बाद नित्य रब्बी को छत पर ले जाता और अंधेरा होने तक पढ़ाता। वह अपना जेब खर्च जोड़ कर उसके लिए कभी कापी, कभी किताब ला देता। उसने अपनी [illegible] स्लेट भी रब्बी को दे दी थी। कुछ ही दिनों में रब्बी दीपेश की किताब तक पढ़ने लगा था और उसका सुलेख ऐसा था, मानो कापी पर शब्द छाप दिए हों।

बात उड़ती-उड़ती लक्ष्मी बाबू के कानों तक पहुंची। पहले तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ, लेकिन जब रब्बी ने दीपेश की पुस्तक फटाफट पढ़ कर

सुना तो वह हैरान रह गये। वह दीपेश की मम्मी से बोले, "रब्बी तो सचमुच होनहार लड़का है। ऐसे बच्चों को पढ़ाना चाहिए।"

"कैसे पढ़ेगा वह? बेचारा कितना गरीब है? उसकी मां लोगों का काम कर कैसे-न-कैसे घर चलाती है।" दीपेश की मम्मी ने चिंता प्रकट की।

लक्ष्मी बाबू थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे। फिर बोले, "विद्या दान सबसे बड़ा दान है। क्यों न हम रब्बी का खर्च उठा कर उसे स्कूल भेज दें। अगर हमारा कोई दूसरा बच्चा होता, वह भी तो स्कूल जाता।"

"कहते तो ठीक हो। रब्बी बहुत समझदार है। जब से दीपेश ने उसे पढ़ाना शुरू किया है, मुझे मम्मी कहने लगा है। घर के कितने ही छोटे-छोटे काम चटपट कर देता है।" दीपेश की मम्मी ने अपनी स्वीकृति दे दी।

अगले दिन रब्बी को स्कूल में दाखिल करा दिया गया। दोनों बच्चे साथ-साथ स्कूल जाने लगे। रब्बी की मां दीपेश की मम्मी और लक्ष्मी बाबू का बहुत उपकार मानने लगी। वह सोचती, एक दिन रब्बी पढ़-लिख कर अच्छा आदमी बनेगा। लक्ष्मी बाबू भी सोचते कि लोग बेमतलब दान-पुण्य ऐसे लोगों को करते हैं, जो उस धन का दुरुपयोग करते हैं। कम-से-कम उनके पैसे का सही इस्तेमाल तो हो रहा है।

वार्षिक परीक्षा हुई तो लक्ष्मी बाबू हैरान रह गये। दीपेश और रब्बी अपनी-अपनी कक्षाओं में प्रथम आये, लेकिन कई विषयों में रब्बी के अंक दीपेश से अधिक थे। दीपेश को इससे कोई जलन नहीं हुई। उसने लक्ष्मी बाबू से वायदा किया कि अगली बार भी वह अधिक अंक लायेगा।

आजाद रहने का गर्व

बहुत दिनों की बात है, रायगढ़ गांव में जमींदार जगतसिंह रहता था। जगतसिंह का एक बहुत बड़ा कृषि फार्म था। फार्म में बहुत से बैल, भैंस, गाय, बकरी और भेड पले थे। बैलों से खेतों में जुताई की जाती थी। भैंस, गाय और बकरियों का दूध शहर में बिकने जाता था और भेड़ों की ऊन उतार कर बेची जाती थी।

फार्म के साथ दूर तक फैला झाड़ियों-भरा जंगल था, जिसमें बहुत से जगली जानवर रहते थे। रात में जानवर फार्म में घुस आते और खेती को नुकसान पहुंचाते। कभी-कभी कोई जानवर भेड़-बकरियों को मार डालता। जगतसिंह ने फार्म के चारों ओर कांटेदार तार लगवा दिये। लेकिन छोटे-छोटे जानवर फिर भी तारों के नीचे से निकल आते। अंत में उसने जानवरों से छुटकारा पाने के लिए एक कुत्ता पाला। कुत्ते का नाम रखा बूचा। बूचा नाम कोई उसने वैसे ही नहीं रखा था। उसने पिल्ले के ही कान कटवा दिये थे। कान भी यों ही नहीं काटे थे। जगतसिंह बहुत अंधविश्वासी था। कुत्ते के कान फड़फड़ाने को वह अपशकुन मानता था। जब कान ही न होंगे तो वह फड़फड़ायेगा क्या?

बूचा जब फार्म पर लाया गया था तो छोटा सा पिल्ला था। लेकिन दूध पीने और मांस खाने से वह थोड़े दिनों में ही तगड़ा कुत्ता बन गया। रात में वह भौंकता तो उसकी आवाज जंगल में दूर-दूर तक गूंजती। जंगली जानवर और चोर उसकी आवाज सुनते ही भाग जाते। वैसे भी वह बहुत खूंखार था। खरगोश और लोमड़ी जैसे छोटे जानवरों को तो वह पलक झपकते ही मार डालता और मजे से उनका नर्म-नर्म गोश्त खाता।

जगतसिंह उसे बहुत प्यार करता था। उसकी देखभाल के लिए एक नौकर अलग से रखा हुआ था, जो बूचे को पानी पिलाता, साबुन से नहलाता और बालों मे कंघी कर मैल निकालता। ठीक समय पर उसे भोजन खिलाता और उसके चींचड़ छुड़ाता। बस, शाही ठाठ थे बूचे के।

तारों के उस पार झाड़ियों में बैठा जालिमसिंह भेड़िया बूचे को यों खातिर

तवज्जो होती देख मन-ही-मन सोचता, बूचा कितना भाग्यशाली है, जो मालिक उसे इतना प्यार करता है। क्यों न वह भी बूचे से दोस्ती गांठ ले। उसके साथ रह खेतों की रखवाली किया करे। मालिक प्रसन्न होकर उसकी भी ऐसी ही खातिरदारी करने लगेगा। बस, जब-तब उसे बूचे से बातचीत करने का मौका मिलता तो वह उससे उसका दोस्त बनने की इच्छा प्रकट करता। बूचा भी सोचता, एक से दो हो जायेंगे तो रात में बारी-बारी से जाग कर खेतों और जानवरों की रखवाली कर लिया करेंगे। धीरे-धीरे वे काफी गहरे दोस्त बन गये।

एक रोज जब वे दोनों तारों के पास बैठे बातों में मग्न थे कि बूचे को लगा, जालिमसिंह कुछ कमजोर हो गया है। चेहरा उतरा हुआ है और आवाज भी कुछ धीमी हो गयी है। उसके जिस्म में फुर्ती भी पहले जैसी नहीं है। उसने प्यार से पूछा, "जालिम भइया, बीमार हो क्या? बड़े कमजोर नजर आ रहे हो।"

"ठीक हूं।" जालिमसिंह ने बहुत धीरे से कहा। वह सोच रहा था कि अपने मन की बात बूचे से कह दे, ताकि मालिक से कह कर वह उसे भी फार्म मे रखवाली का काम दिला दे। फिर तो मजे आ जायेंगे। शिकार की चिंता नही रहेगी। फार्म में बहुत-सी भेड़-बकरियां हैं। वह चुपचाप एकाध को चट कर जाया करेगा।

"आप झूठ कह रहे हो, आपकी आवाज बीमारों जैसी है। सही बताओ दोस्त, शायद मैं तुम्हारी-थोड़ी बहुत सहायता कर सकूं।" बूचे ने हमदर्दी जतायी।

जालिमसिंह ने सोचा, जब बूचा स्वयं पूछ रहा है तो क्यों न अपनी बात कह दे, शरमाने से क्या फायदा। वह बोला, "भाई बूचे, जंगल के सब जानवर मैंने खा लिये हैं। जो बचे थे वे डर कर दूसरे जंगल में भाग गये हैं। दो दिन से भूखा हूं। यदि तुम अपने मालिक से कह कर मुझे भी फार्म पर रखवाली का काम दिला दो तो मेरा भी काम चल जाये।"

"क्यों नहीं? मैं मालिक से आज ही आपकी बात करवा देता हूं।" बूचे का सीना गर्व से फूल गया।

"लाओ तो तब तक मुझे एक भेड़ खाने को दे दो। बड़ी भूख लगी है।" जालिमसिंह की भूख और भी तेज हो गयी थी फार्म में भेड़ों को चरते देख कर।

"ऐसा कैसे हो सकता है?" बूचा गुर्राया, "भेड़ कम देख कर मालिक मेरा खाना भी बंद कर देगा।"

"बस, यों ही दोस्ती का दम भरते थे!" जालिमसिंह खीझ गया।

बूचा चुप हो गया। जालिमसिंह सोचने लगा [illegible]
है वह कैसे आजाद हो सकता है? बूचा भी मालिक के टुकड़ों पर पलता है [illegible]
भी वैसा ही हो जाऊंगा।' उसके मन में विचार आया कि [illegible]
कितना भद्दा लगता है। फिर भी मालिक इसे बहुत चाहता है। [illegible]
खूबसूरत कुत्ता भी तो रख सकता था। जरूर कोई [illegible]
''बूचे, मेरी समझ में नहीं आया कि तुम्हारा मालिक कैसा है, जो तुम जैसा [illegible]
कान कटा कुत्ता रखे हुए है।''

बूचा अपने कान कटे होने पर थोड़ा दुखी हुआ और बोला, ''मालिक [illegible]
कुत्ते का कान फड़फड़ाना अच्छा नहीं लगता। इसलिए बचपन में ही मेरे [illegible]
कटवा दिये थे।''

''गले में यह क्या है?'' जालिमसिंह ने बूचे के गले में बंधे पट्टे [illegible]
में पूछा।

''इसमें जंजीर बांधी जाती है, ताकि मैं कहीं भाग न सकूं।'' बूचे ने [illegible]
हिला कर पट्टे के घुंघरू बजाये।

जालिमसिंह गुस्से में चिल्लाया, ''धिक्कार है [illegible]
में पट्टा डलवा कर खाने से भूखों मर जाना [illegible]
खोकर जिंदा रहने से मर जाना ही अच्छा है।''

और जालिमसिंह पैर फटकारता हुआ आंखों से ओझल हो गया। उस दिन के
बाद उसने फिर कभी फार्म पर रखवाली करने की बात नहीं सोची।

कछुवे-खरगोश की दूसरी दौड़

खरगोश हार गया। शर्त के अनुसार कछुवे ने उसके कान खींच कर लंबे कर दिये। जग-हँसाई हुई सो अलग। बेचारा खरगोश! बहुत दुखी हुआ वह। वह सोचने लगा, यदि कछुआ एक बार और उसके साथ दौड़ना मंजूर कर ले तो बच्चू से सारा बदला चुका लूं। बेदर्द ने कान खींचने में जरा भी दया नहीं की। अब तक कान दर्द कर रहे हैं और भद्दे भी तो लगने लगे हैं। वह खिसियाता-सा बोला, "कछुवे भाई, हार तो मैंने मान ली। मगर तेरी बहादुरी तो तब मानूं, जो एक बार और मेरे साथ दौड़ लगाए।"

बेचारा कछुवा उसका प्रस्ताव सुनकर दुविधा में पड़ गया। सोचने लगा, इस बार तो जीत गया है, लेकिन दोबारा दौड़ने में खरगोश उसके हाथ नहीं आयगा। बनी हुई इज्जत बिगड़ जायेगी और यदि खरगोश की बात नहीं मानता है तो जंगल के सारे जानवर उसे डरपोक कहेंगे। एकाएक उसे बुजुर्गों का कहा याद आया—'हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम।' बस वह आत्मविश्वास के साथ बोला, "भाई खरगोश, यदि तेरी ऐसी ही इच्छा है तो मैं दौड़ने के लिए तैयार हूं। अब की बार हमारी दौड़ पहाड़ी वाले झरने तक होगी।"

"मंजूर है।" खरगोश प्रसन्नता से उछल पड़ा।

"चूंकि इस दौड़ में मैं बहुत थक गया हूं, इसलिए अगली दौड़ एक महीने बाद होगी।" कछुवे ने अपनी बात खरगोश के सामने रखी।

"यह भी मंजूर है।" खरगोश तो उसे दौड़ाना चाहता था, ताकि हार का बदला लिया जा सके। यदि उसने दौड़ने से मना कर दिया तो फिर कभी बदला लेने का उसे मौका नहीं मिलेगा और बिरादरी में सदा उसका सिर नीचा रहेगा।

खरगोश को अपने तेज दौड़ने का घमंड तो था ही, वह महीने भर आराम करता रहा।

लेकिन कछुवे को चैन कहां? वह दिन-रात सोचता कि दौड़ में कैसे जीता जाय? आखिर बुद्धि काम कर ही गयी। एक महीने में दौड़ के रास्ते में पड़ने वाले

तालाब-पोखरों, झील-नालों के कछुवों के पास जा पहुंचा। उसने उन लोगों से मदद मांगी। सभी ने उसकी सहायता करने का वचन दिया।

एक महीने बाद, जंगल के सभी जानवर नदी तट पर आनन्द लेने के लिए दौड़ शुरू होने के स्थान पर इकट्ठे हो गये। कुछ लोग खरगोश पर हंस रहे थे, एक बार कान खिंचवा कर शर्म नहीं आयी, तो कुछ जानवर कछुवे की अक्ल पर तरस खा रहे थे, खोपड़ी की तरह उसकी बुद्धि भी मोटी है। भला खरगोश इस बार क्यों सोने लगा! इस बार कछुवा हारेगा और खरगोश उसके कान खींचेगा तो नानी याद आयेगी।

खैर! सही समय पर गिलहरी रानी ने झंडी दिखा कर दौड़ शुरू करवायी। बस पलक झपकते ही खरगोश गायब हो गया। बेचारा कछुआ भी सरक सरक आगे बढ़ने लगा।

घंटों दौड़ने के बाद खरगोश रास्ते में पड़ने वाले तालाब पर पहुंचा। वह हैरान रह गया! कछुवा उससे आगे चला जा रहा था। खरगोश को देखकर कछुवा बोला, ''आ गये, खरगोश भाई! मैं तो बहुत पहले यहां पहुंच गया था। सोचा, जब तक खरगोश आये, तब तक नहा-धो लूं। चलिए अगली मंजिल पर कर लूंगा।''

खरगोश उसकी बात सुनकर खीझ गया और बोला, ''देखता हूं, तू मुझसे पहले कैसे पहुंचता है? और वह छलांगें लगाता हुआ ओझल हो गया। रास्ते में एक झील थी। खरगोश जैसे ही वहां पहुंचा, उसकी हैरानी का ठिकाना न रहा। कछुवा आगे-आगे दौड़े जा रहा था। उसे देखकर कछुवा बोला, ''कमाल है अभी यहीं तक पहुंचे हो। मैं तालाब में नहाया तो भूख लग आयी। अब खाना खाकर चला हूं।''

खरगोश चिढ़ कर बोला, ''कोई बात नहीं, अभी मंजिल दूर है!'' और वह हवा से बातें करता हुआ आगे बढ़ गया। लेकिन जैसे ही वह दौड़ समाप्त होने वाले झरने के निकट पहुंचा, वह हक्का-बक्का रह गया। कछुवा झरने के किनारे उगी मुलायम घास पर लेटा आराम कर रहा था। उसने खरगोश की आहट पा आंखें खोलीं और मुसकराता हुआ बोला, ''ओह! तुम अब आ रहे हो। मैं तो तुम्हारा इंतजार करते-करते सो गया था।''

खरगोश पर घड़ों पानी पड़ गया। अगले क्षण ही उसके कान खींचने वाली घटना याद आ गयी। वह डर कर बोला, ''अरे, बाप रे! अब की बार तो यह

कान उखाड़ ही लेगा

और वह कछुवे की बात सुने बिना जंगल में भाग गया। कछुवा एक फेर अपनी अक्ल से जीत गया। उसने तालाब, झील और झरने में रहने व अपने भाइयों को पहले ही समझा दिया था कि वे खरगोश के वहां पहुचने ऐसा जतायें, मानो वह ही दौड़ता हुआ वहां पहुंचा है।

न आने वाला कल

परीक्षा नजदीक आ गयी। मुकेश परेशान था। जिस किताब को हाथ लगाता वही मुंह चिढ़ाती-सी जान पड़ती, 'क्यों मिस्टर मुकेश, साल भर तक हमारी खबर नहीं ली। अब परीक्षा आ गयी तो तुम्हें हमारी सुध आयी।' वह समझ न पा रहा था कि अब क्या करे! ढेर-सारी किताबें और थोड़ा सा समय। किस किस को याद करे, किस-किस को छोड़े। परीक्षा में तो सभी किताबों से प्रश्न आयेंगे। याद कुछ भी नहीं। पूरा वर्ष खेल-कूद में गंवा दिया। मां उसे पढ़ने के लिए कहती तो वह चट से कह देता था, ''मां अभी बहुत समय है। सब याद कर लूंगा।''

पर समय किसका इंतजार करता है। वह तो निरन्तर भागता रहता है। घडी की हर टिक पीछे चली जाती है। पलक झपकते ही साल निकल गया। उसने 'कल याद करूंगा' के पीछे कुछ याद नहीं किया। उसने अपनी प्रगति पुस्तिका भी कभी पिताजी को नहीं दिखायी। हर टेस्ट में नंबर कम आते थे और हर बार वह 'कल से पढ़ूंगा' कह कर पिछले टेस्ट को भूल जाता। पिताजी कभी प्रगति-पुस्तिका देखने के लिए मांगते तो वह बहाना बना देता, ''पिताजी, रिपोर्ट बुक तो मेरे दोस्त बिल्लू के पास है, कल ला कर दिखा दूंगा; या मास्टर जी से गुम हो गयी है, नयी मिलने पर जरूर दिखाऊंगा।''

लेकिन रिपोर्ट बुक न कभी बिल्लू के घर से आयी और न कभी नयी मिली। ये तो पिताजी को चकमा देने भर के बहाने मात्र थे। मगर अब परीक्षा सिर पर आ गयी है। उससे कैसे बचा जाये। वह मन ही-मन प्रार्थना करता है- 'हे भगवान! मैं बीमार हो जाऊं तो पच्चीस पैसे का प्रसाद चढ़ाऊंगा।' कभी सोचता 'सुना है बगल में प्याज दबा कर धूप में बैठने से बुखार हो जाता है। क्यों न मैं भी इस तरकीब का लाभ उठाऊं!' और एक दिन वह बगल में प्याज दबा कर आधा दिन धूप में बैठा भी रहा। मगर बेरहम बुखार ने भी उसे परीक्षा से छुटकारा न दिलाने की कसम खा ली थी, और न भगवान ने ही प्रसाद की रिश्वत स्वीकार

की। हाय, बेचारा मुकेश!

उसे शाम को रोटी भी अच्छी नहीं लगी। वह बिस्तर पर लेट कर नयी-नयी तरकीबें सोचता रहा, मगर उसे सफलता हाथ लगती दिखायी नहीं दी और न जाने कब वह खुर्राटें भरने लगा।

मुकेश एक बहुत ही सुन्दर बगीचे में उदास बैठा था। उसे बुलबुल का चहकना, कोयल का कूकना और फूलों पर तितलियों का मंडराना कतई अच्छा नहीं लग रहा था। भौंरों का मधुर गीत सुनना भी आज उसे अपनी ओर आकर्षित नहीं कर रहा था। उसे अपने चारों ओर परीक्षा का भूत दिखायी पड़ता था। तभी उसे बहुत मधुर गीत की लय सुनायी पड़ी। उसने चौंक कर अपने दायें-बायें देखा। कहीं कोई न था। धीरे-धीरे गीत की लय निकट आती जा रही थी और अब बोल साफ सुनायी देने लगे थे—

काम करो, कुछ काम करो।
यों बैठे मत आराम करो ।।
काम बिना आराम न होगा।
बिना काम के नाम न होगा ।।
पढ़-लिख करके नाम करो।
काम करो, कुछ काम करो ।।

उसकी निगाह पेड़-पौधों के झुरमुट की ओर गयी। वह चौंक गया। एक नन्ही-सी सुन्दर लड़की पौधों पर खिले फूलों से खेल रही थी और गुनगुना रही थी। उसकी बाजुओं के पास दो नन्हे मोर जैसे सुन्दर पंख उगे थे और उसने नीले रंग के बढ़िया कपड़े पहने हुए थे। वह उड़ कर एक पौधे से दूसरे पौधे के पास पहुंच जाती थी।

"ओ! यह तो नन्ही परी है!" मुकेश के मुंह से निकल गया। उसने सोचा, शायद यह नन्ही परी ही परीक्षा से बचने का कोई उपाय बता दे। वह उसके पास गया और बड़ी विनम्रता से बोला, "परी दीदी, नमस्ते।"

"नमस्ते मुकेश भाई।" नन्ही परी ने तुरन्त जवाब दिया।

"अरे! तुम तो मेरा नाम भी जानती हो!" मुकेश ने आश्चर्य प्रकट किया।

"और तुम मुझे नहीं पहचानते, मुकेश! मैं तुम्हारी किताब वाली नीलम परी हूं।" नन्ही परी ने उसे याद दिलाया।

''नीलम दीदी, मन किताब पढ़ा ही कहां है, तो तुम्हें पहिचानता।'' मुकेश ने उदास हो कहा।

''छिः छिः, तुम पढ़ते नहीं। यह तो बुरी बात है।''

''हां दीदी, मैं पूरे साल खेलता रहा हूं। मुझे खेलना अच्छा लगता है।'' मुकेश बुझे हुए स्वर में बोला, ''दीदी, अब तुम ही कोई तरकीब बताओ। परीक्षा आ गयी है और मुझे कुछ भी याद नहीं।''

''यह बात है।'' नीलम परी ने सहानुभूति जतायी और कहा, ''मुकेश भैया, खेलना कोई बुरी बात नहीं। लेकिन खेलने के साथ-साथ पढ़ना भी तो जरूरी है। हर काम समयानुसार होना चाहिए।''

''लेकिन अब क्या करूं, नीलम दीदी! परीक्षा तो बिलकुल निकट आ गयी है।''

''कोई बात नहीं, भैया! हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। अभी परीक्षा शुरू होने में महीना-भर है। मेहनत और लगन से पढ़ोगे तो जरूर पास होगे।'' नीलम परी ने उसे उत्साहित किया और बोली, ''पास हो जाओगे तो दीदी को मत भूल जाना। मिठाई खिलाओगे न अपनी दीदी को। मैं इसी बगीचे में मिलूंगी।''

मुकेश गद्गद हो गया। उसने देखा, नीलम परी ने अपने नीले-नीले पंख हवा में खोल दिये और वह उड़ने लगी। उसने दोनों हाथ जोड़ कर नमस्ते की। नीलम ने भी उसे टा-टा किया। मुकेश की आंख खुल गयी। नीलम परी कहीं न थी। वह तो अपने कमरे में था। पर परी की बातें उसे याद थीं। वह टेबिल लैम्प जला कर पढ़ने में जुट गया।

बच्चों ने टेलीविजन देखा

अंजू और संजय के घर टेलीविजन क्या आया, अड़ोस-पड़ोस के बालकों को तमाशा मिल गया। सारा दिन बच्चों से घर भरा रहता। बहुत-से बच्चे उस दिन खाना-पीना ही भूल गये। कोई टेलीविजन के स्टैण्ड को छूकर देखता तो कोई स्क्रीन के शीशे को छूकर कहता, "यहां आती है तस्वीर।" और कितने ही अंजू और संजय की मां से पूछते, "आण्टीजी, टेलीविजन कब चलेगा?"

बताते बताते अंजू की मां परेशान हो गयी और अन्त में झुंझला कर उसने सारे बच्चों को बाहर निकाल कर दरवाजा बन्द कर लिया। बेचारे बच्चे बडी बेसब्री से दिन छिपने का इन्तजार करने लगे। अंजू और संजय तो मानो आज हवा में उड़ रहे थे। जिन बच्चों के साथ वे रोज खेला करते थे, आज उनसे बात करना भी भूल गये थे।

जैसे जैसे दिन छिपा, बच्चों की भीड़ दरवाजे पर बढ़ती गयी। अंजू की मां ने दरवाजा खोल दिया। बस, एक मिनट में टेलीविजन वाला कमरा बच्चों की चुलबुलाहट से भर गया। अंजू के डैडी-मम्मी बहुत हैरान और परेशान थे। अंजू-संजय दोनों—सोफे पर यों अकड़े बैठे थे, मानो इस छोटी-सी रंगशाला के वे ही नायक नायिका हों।

बच्चों की चिल्लपों के बीच प्रोग्राम खत्म हुआ, मगर अंजू की मां इतनी चिढ़ गयी कि अगले दिन उसने दोपहर से ही किवाड़ बन्द कर लिये। धीरे-धीरे दिन ढलने लगा। बच्चे बेचैनी से दरवाजे पर निगाह गड़ाये बैठे रहे। अन्दर से कोई बालक आता या भीतर जाता, तो उनके नन्हे दिल धड़क उठते और जैसे ही वे उतावले हो दरवाजे की ओर बढ़ते, खटाक से दरवाजा बन्द हो जाता। वे मन मार कर रह जाते और बेबस निगाहों से उधर देखने लगते। सांझ होते ही पिंकी और टीटू ने सोचा कि चल कर टेलीविजन देखना चाहिए। कल भी आण्टी ने उन्हें आराम-कुर्सियों पर बिठा कर टेलीविजन दिखाया था। आखिर वे अंजू-संजय के दोस्त हैं न! किन्तु अंजू और संजय के दरवाजे पर जाकर उन्हें भी दूसरे बच्चों

की तरह निराशा हाथ लगी। पिंकी ने अपनी सहेली को पुकारा, "अंजू, दरवाजा खोलो।"

अन्दर से कोई उत्तर न मिला, तो टीटू ने किवाड़ बजाते हुए अपने दोस्त को आवाज लगायी, "संजय, किवाड खोलो। हम टेलीविजन देखने आये हैं।"
"खोलता हूं।" कहकर संजय दौड़कर दरवाजे तक आया।

"ठहर तो सही, शैतान! मैं दरवाजा खोलने को मना कर रही हूं और तू दोस्तों के लाड़ में आ रहा है।" दरवाजा नहीं खुला। किवाड़ों के पीछे से संजय की मम्मी के संजय को डांटने की आवाज आ रही थी। पिंकी और टीटू निराश होकर वहीं अन्य बच्चों के पास पांव पसार कर बैठ गये।

थोड़ी देर बाद टीटू के दिमाग में बात आयी, क्यों न आण्टी को दरवाजा खोलने को मजबूर किया जाये। बस, वह दौड़ा दौड़ा अपने घर गया और वहां से दो-तीन गत्ते और स्याही की दवात उठा लाया। उसने सारे बच्चों को राजी कर लिया कि उसकी बात मानेंगे। उसने गत्तों पर स्याही से नारे लिखे, 'आण्टी, दरवाजा खोलो, टेलीविजन देखना हमारा अधिकार है। हम टेलीविजन देखे बिना नहीं जायेंगे। हम सब एक हैं।'

मोटो तैयार हो जाने के बाद उसने दो-दो बच्चों की कतार बनायी, आगे आगे और बीच के बच्चों के हाथ में गत्ते थे। टीटू सब का नेता था। उसने नारा लगाया, "आण्टी जी।"

"बाहर आओ।" बच्चों ने नारा पूरा किया।

"टेलीविजन देखना..."

"हमारा अधिकार है।"

"सारे बच्चे..."

"एक हैं।"

"हमारी मांग..."

"पूरी करो।"

घर के बाहर हो-हल्ला मचते देख, आण्टी को बाहर आना पड़ा। टीटू ने जोरों से नारा लगाया, "आण्टीजी...!"

"जिन्दाबाद!" बच्चों ने जोरों से नारे की पूर्ति की।

"टेलीविजन देखने की मांग...!"

"पूरी करो!"

आण्टी को बच्चों की इस लीला पर हँसी आ गयी। उसने आगे बढ़कर

टीटू के गाल अपनी अंजलि में भर लिये और प्यार से उसे चूमती हुई बोली, 'बहुत शैतान हो गया है रे! चलो सब अन्दर, और चुपचाप बैठ कर टेलीविजन देखो। दंगा करोगे, तो फिर बाहर निकाल दूंगी।"

"आण्टीजी, मैं विश्वास दिलाता हूं, अब कोई बच्चा शोर नहीं करेगा।" बच्चों की ओर से टीटू ने आण्टी को विश्वास दिलाया।

सारे बच्चे कमरे में चले गये और आण्टी ने टेलीविजन खोल दिया।

आजादी का सुख

रिंकू की मां मर गयी। रिंकू और उसके तीन छोटे भाई बहन रह गये अकेले। बेचारे दिन-भर गली में मारे-मारे फिरते। रिंकू उन सब में हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर था। बच्चे उसे बहुत प्यार करते थे। उसे भरपेट रोटी खिलाते। जब वह रोटी खाता होता और उसके नन्हे भाई-बहन उसके पास आते तो वह मुंह पर जीभ फेरता हुआ अलग खड़ा हो जाता। उन्हें खाता हुआ देखकर उसके चेहरे से ऐसा लगता, मानो अपना हिस्सा देकर उसे खुशी हो रही हो।

नन्ही सीमा को रिंकू बहुत भाता था। उसने ही उसका नामकरण किया था। वह अपनी मम्मी की आंख बचा कर उसे अपना दूध पिला देती, साबुन से नहलाती और फटे-पुराने कपड़ों का गद्दा बिछा कर सुला देती। कोई रिंकू को छेडता तो वह बड़ी-बूढ़ियों की तरह मुंह पर उंगली रखकर कहती, "शी ऽ ऽऽ, अभी सोया है, कच्ची नींद उठ गया तो उसकी तबियत खराब हो जायेगी।"

हम उसकी भोली-भोली बातें सुन कर हँसते-हँसते लोटपोट हो जाते। रिंकू भी ऐसा शैतान कि हम उसे रोटी डालते तो चुपचाप पड़ा रहता, खाता नहीं। आख खुली होती तो बंद कर लेता। सीमा स्कूल से लौटती तो वह कुंई-कुंई कर घर सिर पर उठा लेता, सीमा के पैरों में लोटपोट होता और उसकी फ्रॉक पकड़ कर खींचता हुआ रसोईघर की ओर ले जाता। सीमा उसे दुलारती, "हा आ ..ऽ, भूखा है, तू खाना खायेगा!"

बस फिर क्या, वह रोटी खाकर सीमा के साथ ऊधम मचाता और सारे घर के लिए खिलौना हो जाता। समझदारी में तो वह बिलकुल आदमी जैसा व्यवहार करता। सुबह-शाम गाय दुहने का समय होता तो वह सीमा की मम्मी के दोहनी को हाथ लगाते ही बछिया की रस्सी खोलने लगता। सीमा की मम्मी दूध दुह कर, दोहनी को रखकर किसी काम में लग जाती तो वह बैठा चौकसी करता। मजाल क्या, जो पूसी दोहनी के पास फटक जाये। वह गुर्रा कर उसे दूर

भगा दता।

धीरे-धीरे रिंकू बड़ा होने लगा। सीमा जिद्द करती थी कि रिंकू के लिए पट्टा और जंजीर लायी जाये। मैं रिंकू को पालने के पक्ष में नहीं था। देसी कुत्तो की आदतें मुझे नहीं भातीं। मैंने सीमा को समझाना चाहा कि मैं उसे अपने दोस्त के यहां से अल्सेशियन पिल्ला ला दूंगा। मगर वह न मानी। उसे तो रिंकू पसद था, केवल रिंकू। उसकी मां भी मेरी बात से सहमत नहीं थी। उसका कहना था, ''रिंकू देसी नस्ल का जरूर है, पर उसके गुण तो देखो। हर मंगलवार को व्रत रखता है। पानी तक नहीं छूता। कभी घर की किसी चीज को गंदा नहीं करता।''

वास्तव में रिंकू ऐसा ही था। यद्यपि मैं व्रत-उपवास में विश्वास नहीं करता किन्तु सीमा की ममी को उसकी यह आदत बहुत पसंद थी। वह उसे प्यार से भगत जी कहती थी। जब उसके गुण बखानती तो मैं तनिक चिढ़ कर कहता, ''जब तुम्हारा लाडला इतना अच्छा है तो पट्टा-जंजीर क्या करोगी?''

''मुझे उसका गली के आवारा कुत्तों के साथ मिलना-जुलना पसंद नही।'' वह भी खीझ कर उत्तर देती।

रिंकू को हमारे यहां सब प्रकार सुख था। लेकिन वह अपने भाई-बहनों को नहीं भूला था। जब उसे उनकी याद आती तो वह चुपके से खिसक जाता और घंटों उनके साथ गली में खिलंदड़ी करता। उसके भाई--बहन आवारा तो थे ही, वे उनके साथ किसी के घर में घुस कर नुकसान कर आते। कभी-कभी उसका परिणाम रिंकू को भी भुगतना पड़ता। एक बार तो किसी ने उसकी टाग ही तोड़ दी थी और सीमा की मम्मी को कई दिन तक उसकी टांग पर पुराना गुड़ और तेल पका कर बांधना पड़ा था।

बस, मुझे सीमा और उसकी ममी की बात मान कर पट्टा और जंजीर लाने ही पड़े। न रिंकू बाहर आयेगा, न गंदी आदतें सीखेगा, घुंघरुओं वाला पट्टा रिंकू के गले में डाल कर उसे जंजीर से बांध दिया गया। स्वतंत्र घूमने वाले को यह बधन स्वीकार न था। उसने 'चाऊं-चाऊं' कर घर सिर पर उठा लिया। आजाद होने के लिए अंजीर को खूब झटका, पीछे हट कर पट्टे से सिर निकालना चाहा। मगर सब कोशिशें बेकार रहीं। हमने सोचा, पहली बार बंधा है। थोड़ी देर में सब ठीक हो जायेगा। हम उसे वहीं बंधा छोड़ दूसरे कमरे में चले गये। थोड़ी देर बाद मैं उसके कमरे में लौटा तो रिंकू उदास बैठा था। उसकी आंखों की कोरों में पानी भरा था। उसने कातर दृष्टि से मुझे ऐसे देखा, मानो कह रहा हो कि 'मेरी आजादी छीन कर आपको क्या मिला?' फिर उसने अपना मुंह पंजों में

छिपा लिया।

सीमा स्कूल से लौटी तो उसने एक बार पुनः [illegible] में [illegible] का प्रयास किया। वह जोर जोर से चिल्लाने लगा। मानो बस्ता रखकर उसके पास [illegible] आयी। वह उससे लिपट गया, मानो उससे स्वतंत्र होने के लिए विनती कर रहा हो। सीमा ने उसकी आँखें पोंछीं और पुचकारते हुए पट्टे से जंजीर निकाल दी।

बस, अब क्या था। सीमा के पैरों में लेट कर उसने कृतज्ञता प्रकट की और फिर वह तीर की तरह बाहर दौड़ गया। घंटों न जाने कहाँ भटकता रहा। काफी देर बाद लौटा तो वह दूर खड़ा हमारे दरवाजे की ओर देखता रहा। मैंने उसे बुलाना चाहा, मगर वह वहीं खड़ा पूंछ हिलाता रहा। मानो कह रहा हो, ‘आजादी खोकर मुझे तुम्हारा प्यार नहीं चाहिए।’ तब से वह हमारे घर कम ही आता है। यदि मेरे हाथ में जंजीर हो तो सीमा भी उसे बुला नहीं पाती।

अपना घर

एक थी चींची चिड़िया। उसने आम के पेड़ पर एक सुन्दर सा घोंसला बनाया। फिर उसने घोंसले में दो अंडे दिये। कुछ दिनों बाद उसने अंडों में से लाल-लाल रंग के दो नन्हे बच्चे निकाले। उसने बच्चों का नाम रखा चूंचू और चींमी अब चीची का काम बढ़ गया। बेचारी सारा दिन खेतों से दाना बीन कर लाती। जैसे ही वह दाना लेकर आती, चूंचू और चींमी अपनी लाल रंग की चोंच खोल कर मां से दाना पाने के लिए शोर मचाने लगते।

कुछ ही दिनों में चूंचू और चींमी के सुन्दर-सुन्दर पंख उग आये। वह मां को उड़ता देखते तो खुद भी उड़ने के लिए पंख फड़फड़ाते। लेकिन पंख अभी नये और कमजोर थे। इसलिए चींची उन्हें समझाती, ''मेरे बच्चो, अभी उड़ने की कोशिश न करना। नीचे गिर जाओगे तो हड्डी-पसली टूट जायेंगी।''

धीरे-धीरे बच्चे बड़े होने लगे। उनके पंख थोड़े-बहुत उड़ने लायक हो गये। अब जैसे ही चींची उनके लिए चुग्गा लेने जाती, वे उड़ने का अभ्यास करते। कभी गिर कर चोट भी खा जाते, मगर मां के डर से कुछ न कहते। जब उन्हें अपने पंखों पर उड़ने का पूरा विश्वास हो गया तो एक दिन मां की गैरहाजरी में घोंसले से निकल कर दूर-दूर तक उड़ने लगे। बड़ा मजा आया। वे कभी एक पेड़ से उड़ कर दूसरे पर पहुंचते, तो कभी एक डाल से दूसरी डाल पर जा पहुंचते। फिर उड़ान भरते हुए अपने पेड़ पर लौट आते। बस, चूंचू ने सोचा— मां हमें यों ही डराती है, अब तो हम बहुत दूर तक उड़ सकते हैं।

अगले दिन वे मां से बोले, ''मम्मी, हम तो तुम्हारे साथ चुग्गा चुगने चलेंगे।''

''मेरे नन्हे बच्चो! तुम अभी बहुत छोटे हो, दूसरे पक्षी तुम्हें मार कर खा जायेंगे।'' मां ने उन्हें समझाने की कोशिश की, मगर वे क्यों मानते। उन्हें तो उड़ने की खुशी हो रही थी। जैसे ही चिड़िया चुग्गा लेने गयी, वे खुले आकाश में उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम में उड़ने लगे। उन्हें बहुत भला लग रहा

था खुले आकाश के नीचे उडते हुए उन्होंने दुनिया पहली बार देखी थी। वे सोच रहे थे अहा! यह दुनिया कितनी सुन्दर है। दूर दूर तक नदियां, हरियाली छायी है। नहाने के लिए जगह जगह साफ पानी के तालाब हैं। खाने के लिए चारों तरफ अनाज और फल हैं। ऐसी सुंदर दुनिया को छोड़ कर वे अपने घोसले में नहीं जायेंगे। मां को उनके उड़ने का पता लग गया तो वह उन्हें बाहर नहीं निकलने देगी।''

सारा दिन वे खेतों और पेड़ों पर उड़ान भरते रहे। थकने तो वे निकट के किसी पेड़ पर सुस्ताने के लिए बैठ जाते। उन पेड़ो पर उन्हें दूसरे पक्षियों के घोसले मिलते। उनमें उन्हीं जैसे छोटे--छोटे बच्चे बैठे होते. चूंचू और चींमी ने सोचा, क्यों न इन बच्चों से दोस्ती कर ली जाये, रात को भी उन्हीं के घर में रहेंगे। अपने घर लौटने पर तो मां की झिड़कियां सुननी पड़ेंगी। बस, वे उड़ कर पेड की चोटी पर बने चीऊं चील के घोंसले पर पहुंचे। घोंसले में दो नन्हे बच्चे बैठे थे। चूंचू ने उन्हें नमस्ते की और उन्हें अपना दोस्त बनाने की बात कही। चीऊं के बच्चों ने चूंचू की बात मान ली और उन्हें घोंसले में बुला लिया। जैसे ही चूंचू की चींमी घोंसले में पहुंचे, उन्हें घोंसले के कांटे चुभ गये, बड़ा गुस्सा आया उन्हें। यह भी कोई घोंसला है। कांटे-ही-कांटे भरे हैं। वे बोले, ''अरे, तुम लोग इसमें कैसे रहते हो तुम्हें कांटे नहीं चुभते? धूप-पानी से कैसे बचाव करते हो?''

चींऊ के बच्चे हँसे और बोले, ''भइया, हमें तो बड़ा आनन्द आता है अपने घोंसले में। अगर धूप-पानी से बचने के लिए इसकी छत बना दी जावे तो हमारी मम्मी दूर तक कैसे देखेगी और हमारे लिए शिकार कैसे लायेगी। वह यही बैठी मीलों दूर तक देख लेती है।''

चींमी को उनकी बात अच्छी नहीं लगी। वह सोचने लगी, ये कैसे गंदे बच्चे हैं, जो ऐसा भद्दा घर पसंद करते हैं, वह चूंचू से बोली, ''चलो भइया, हम इनके साथ नहीं रहेंगे। इनकी मां कहीं हमारा ही शिकार न कर ले।''

तभी दूर से चींऊ की भद्दी आवाज उनके कानों में पड़ी और वे वहां से उड़कर दूसरे पेड़ पर जा पहुंचे। जिस डाल पर वे बैठे थे, उसमें टेंटें तोते की कोटर थी। कोटर में टेंटें के दो नन्हे बच्चे बैठे थे। वे उड़कर टेंटें के बच्चों से दोस्ती करने पहुंचे। टेंटें के बच्चे उन्हें देखकर बहुत खुश हुए और उनका स्वागत किया—''आओ भाई! हम सारा दिन यहां अकेले बैठे रहते हैं। अकेले में जी नही लगता, बेचारी अम्मा दूर--दूर तक हमारे लिए चुग्गा लेने जाती है। तुम हमारे

दोस्त बन जाओ तो आपस में बात कर दिन बिताया करेंगे।''

चूंचू और चींमी कोटर में अंदर चले गये। मगर उनका तो दम घुटने लगा इस छोटी-सी बंद कोटर में। थोड़ी-सी देर में वे घबरा उठे। बोले, ''भाइयो, तुम इस बंद खोखल में कैसे रहते हो? हमारी तो सांस बंद हुई जा रही है।''

टेंटे के बच्चे हँसे और बोले, ''भइया चूंचू, अगर हमारा घर बंद न होगा तो दूसरे पक्षी हमारे मां-बाप की गैरहाजिरी में हमें खा जायेंगे। हमें अपना यही घर अच्छा लगता है।''

चूंचू और चींमी सोचने लगे कि जब इन्हें इतने घटिया घर पसंद हैं तो हमारा घर इन सबसे अच्छा और आरामदेह है। मां ने कितने जतन से उसे नरम-नरम घास से बनाकर सन और सनई के मुलायम गद्दे लगाये हैं।

बस, वे उड़ते हुए अपने घोंसले में लौट आये। घोंसले में बैठी चींची उनका काफी देर से इंतजार कर रही थी। वह डर रही थी कि कहीं उसके पीछे कोई कौआ अथवा चील चूंचू और चींमी को खा न गया हो। वह बच्चों को देख कर बहुत खुश हुई और बोली, ''मेरे बच्चो! तुम कहां चले गये थे? मैं तो फिक्र मे डूबी थी।''

''मम्मी हम सैर करने गये थे।'' चूंचू बोला और फिर चींमी और चूंचू ने दिन-भर की सारी कहानी सुना दी, ''मम्मी, सब बच्चों को अपने भद्दे घर प्यारे है, हमारा घर तो उन सबसे सुंदर है।''

''मेरे अच्छे बच्चो! अपना घर कैसा भी क्यों न हो, वही प्यारा होता है, क्या तुमें अपना घर अच्छा नहीं लगता?'' चींची ने उनके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए पूछा।

''नहीं मम्मी, हमें अपना घर बहुत प्यारा लगता है।'' कह कर दोनों बच्चे मम्मी से लिपट गये और मम्मी उन्हें स्नेह से सहलाने लगी।

बहादुर की बहादुरी

सर्दी का मौसम था। दांत किड़किड़ बजते थे। मम्मी रसोई घर में खाना बनाने में व्यस्त हो जाती तो अनीता और आलोक कमरे में अपने पहाड़ी नौकर बहादुर को बुला लेते--"बहादुर भैया, कहानी सुनाओ।"

बहादुर उन्हें रोजाना नयी-नयी कहानी सुनाता। कभी कोई कहानी याद न आती तो उसे तुरन्त घड़ कर सुनानी पड़ती। नाह-नुक्कर बिल्कुल नहीं चलता। उसके एक बार मना करने पर अनीता का मुंह गोल-गप्पा हो जाता। वह नाराजगी-भरे स्वर में कहती, "कहानी नहीं सुनाते, न सुनाओ। बस, आज से हमारी कुट्टी।"

वह चौके के दांतों में अंगूठे का नाखून फंसा कर 'किट' करती। नन्हा आलोक भला कहां पीछे रहने वाला था। वह भी मुंह फुला कर कहता "बहादुल भैया, मेली भी कुट्टी।" वह अनीता की नकल करता हुआ अपने सामने के मोती-से दांतों में नाखून अटकाने की कोशिश करता।

बहादुर को अपने नन्हे दोस्त की इस हरकत पर प्यार आ जाता। उसके गालों को अपनी हथेली में भर कर पुचकारते हुए कहता, "राजा भैया नाराज हो गये। अभी सुनाता हूं कहानी।"

और कहानी शुरू हो जाती। अनीता और आलोक हुंकारा देते जाते। अधिकतर कहानियां पहाड़ी जीवन से जुड़ी होतीं, जिनमें वह अपनी बहादुरी के किस्से कहा करता। पहाड़ों और घने जंगलों में गायें चराते समय उसकी मुठभेड़ भेड़िये अथवा बाघ से कैसे हुई और उसने कैसे उनको मार भगाया था। रीछ के साथ कुश्ती में उसने कितने जख्म खाये थे। वह अपने जिस्म के उन भागों को उघाड़ कर दिखाता। दस फुट लंबे अजगर को उसने लाठी से मार डाला था। आज भी उसकी खाल में भूसा भरकर अपने घर पर रखा है।

बच्चे सांस रोक कर उसके कारनामे सुनते रहते। कहानी समाप्त होने पर उसकी बहादुरी की प्रशंसा करते। एक दिन उसने शेर मार डालने की कहानी

सुनायी, ''हा तो बच्चो! मैंने एक शेर के पैर काट डाले थे।''

बच्चे हैरत में रह गये। दोनों ने आंखें बड़ी-बड़ी करके कहा ''पैर काट डाले थे!''

''हां!'' उसने सीना फुला कर उत्तर दिया।

बच्चों की समझ में नहीं आया, उसने पैर क्यों काटे और शेर ने उसे क्यो नहीं खाया?

''बहादुल भैया तुमने छेल के पैल क्यों काटे? उछने तुम्हें कुछ कहा नही?'' नन्हे आलोक ने जानने की उत्सुकता प्रकट की।

''उसने बिलकुल चूं नहीं की।'' बहादुर ने उत्सुकता का समाधान करते हुए कहा, ''उसके मुंह था ही नहीं।''

''छेल के मुंह नहीं होता?'' आलोक ने फिर हैरानी से पूछा।

''हमने चिड़ियाघर में जो शेर देखा था, उसके तो मुंह था। बड़ा डर लग रहा था मुझे उसका मुंह देखकर।'' अनीता ने बीच में ही कहा।

''ठीक है। शेर के मुंह होता है।'' बहादुर ने हँसते हुए कहा, ''जिस शेर के मैंने पैर काटे थे, यदि उसके मुंह होता तो वह पैर क्यों काटने देता।''

दोनों बच्चे चहक पड़े, ''बहादुर भैया ने मरे हुए शेर के पैर काटे है।''

छुट्टी का दिन था। अनीता और आलोक ने आज बहादुर की बहादुरी की परीक्षा लेने की योजना बनायी। शाम होते ही मम्मी रसाईघर में खाना बनाने लगी और अनीता तथा आलोक अपनी योजना की सफलता की प्रतीक्षा में बेचैन हो रहे थे। कब खाना बने और काम खत्म हो, और कब बहादुर भैया अपनी कोठरी में जाएं।

जैसे-तैसे काम निबटा और बहादुर अपनी कोठरी में गया। कपड़े उतार कर उसने बत्ती बुझायी और अपनी चारपाई पर लेटने लगा। बिस्तर में 'चूं-चूं' की आवाज हुई। वह उछल कर खड़ा हो गया। बत्ती जलायी। कहीं कुछ न था। उसने सोचा, शायद उसे धोखा हुआ है। वह पुनः बत्ती बुझा कर चारपाई पर पहुचा। बैठते ही फिर चूं-चूं की आवाज हुई। अब तो वह सिर पर पैर रखकर बाहर की ओर भागा। डर के मारे उसकी आवाज नहीं निकल रही थी। उसने किसी-न-किसी तरह हौसला कर चिल्लाना शुरू किया, ''भूत, भूत।''

मम्मी और पापा अपने किवाड़ खोल कर बाहर आ गये। वहां बहादुर खड़ा था और थर्र-थर्र कांप रहा था। पापा बोले, ''क्या हुआ रे बहादुर?''

''सा'ब मेरे कमरे में भूत छिपा है।'' बहादुर की सांस तेजी से चल रही

यमराज हार गया

मृत्यु मंत्रालय के उपविभागों की वार्षिक प्रोग्रेस रिपोर्टें यमराज की मेज पर फैली पडी थीं। सभी विभागों की प्रगति संतोषजनक थी। मगर मनुष्य विभाग के गिरते आकड़ों से वह बहुत चिंतित थे। यदि जन्म मंत्रालय इसी प्रकार तरक्की करता रहा और मृत्यु-दर इसी तरह घटती रही तो वह दिन दूर नहीं जब सारी पृथ्वी पर मनुष्य-ही-मनुष्य गिजबिजाते नजर आने लगेंगे। कहीं तिल धरने को जगह नहीं रहेगी। इस गंभीर स्थिति से निपटने के लिए उन्होंने अपने प्रमुख सलाहकार-गणों को बुलाया और सर्वसम्मति से तय किया कि मनुष्य-मरण विभाग के कार्यों की जाच के लिए एक जांच आयोग गठित किया जाये।

तीन महीने बाद जांच आयोग की रिपोर्ट यमराज के सामने प्रस्तुत की गयी और उसमें मनुष्य पर यमराज के मृत्यु मंत्रालय के कार्यों में हस्तक्षेप करने का गंभीर आरोप लगाया गया।

बताया गया कि मनुष्य ने अपनी बुद्धि का इतना विकास कर लिया है कि वह कुदरत के असंभव समझे जाने वाले कामों को संभव करके दिखा रहा है। चाद तक को उसने पैरों तले ले लिया है। ऐसे ही वह जीवन विज्ञान में पूरी मदाखलत करने लगा है। उसने परख-नलियों में बच्चों की खेती करनी शुरू कर दी है। यही नहीं, वह एक-एक करके असाध्य रोगों पर काबू पाता जा रहा है। इसी लिए मरण-दर दिनों-दिन घट रही है। वह दिन बहुत दूर नहीं जब मरने वालों की संख्या शून्य के बराबर हो जायेगी। अत: अब यमराज को इस विकट समस्या से निबटने के लिए आदमी की बुद्धि पर अंकुश लगाना चाहिए।

यमराज ने रिपोर्ट पर गहराई से सोचा और सारी रिपोर्ट का अध्ययन करने के बाद उनके दिमाग में एक बात ही आयी कि आदमी की बुद्धि का विकास तेजी से हो रहा है और वह ईश्वर के विधान मे घुसपैठ करने लगा है। क्यों न आदमी की बुद्धि-परीक्षा ली जाये कि वह कितना होशियार हो गया है? उन्होने फौरन अपने सेक्रेटरी को मृत्यु-लोक से एक जिंदा आदमी लाने का आदेश जारी

कर दिया।

यमलोक के सिपाही कितने ही लोगों के पास गये और उनसे जिंदा ही यमलोक चलने की प्रार्थना की। मगर किसी ने भी उनकी बात नहीं मानी। बल्कि उनकी अक्ल पर हँसते थे—"कैसे लोग हैं आप, भला कोई जिंदा ही यमलोक क्या जाने लगा? जाओ, अपना रास्ता नापो। फालतू बातों के लिए हमारे पास समय नहीं।"

यम के सिपाही बहुत निराश हुए। उनमें से एक-दो को गुस्सा भी बहुत आया। यदि बस चलता तो वे सारे मृत्युलोक के आदमियों को यमपुरी ले जाते। मगर ऐसा करने से तो सारे आदमी मर जायेंगे और उन्हें चाहिए जिंदा आदमी। आखिर उन्होंने एक तरकीब सोच निकाली, क्यों न किसी ऐसे आदमी को ले जाया जाये जो इतना व्यस्त हो कि उसे पता ही न चले कि उसे कौन, कब और कहां ले गया?

वे घूमते-घूमते छुन्नामल-मुन्नामल की फर्म के पास से गुजरे तो सामने एक मुनीम बही-खातों में उलझा पाया। बस, बन गया काम। उन्होंने उसे ज्यों का-त्यों उठा लिया और यमपुरी को ले उड़े।

आधा रास्ता तय करने पर मुनीम का बहीखाता पूरा हो गया। उसने दवात में कलम रख कर कमर सीधी की और एक थकान भरी जंभाई ली। जैसे ही उसने अपने चारों ओर देखा तो हैरान रह गया। वह अपनी चौकी पर बैठा उड़ा जा रहा था। चौकी के चारों पायों को चार सिपाही अपने कंधों पर उठाये थे। उसने हड़बड़ा कर सिपाहियों से पूछा, "भाई, आप लोग मुझे कहां ले जा रहे हो?"

"यमपुरी", एक सिपाही ने उत्तर दिया।

"क्यों?" मुनीम डर गया।

"यमराज आदमी की बुद्धि की परीक्षा लेना चाहते हैं। कोई भी जिंदा आदमी यमपुरी जाने को राजी न हुआ तो हम आपको उठा लाये हैं।"

मुनीम थोड़ी देर तक सोचता रहा। यदि वह वापस लौटना चाहे तो पृथ्वी पर छलांग लगाते ही उसकी हड्डी-पसली टूट जायेंगी। अब गनीमत इसी में है कि यम महाराज को अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाया जाये। एकाएक उसे एक तरकीब सूझ आयी और वह सिपाहियों से बोला, "मुझे यमपुरी में जाने में कोई एतराज नहीं। लेकिन आगे मैं तभी चलूंगा, जब आप लोग मेरा काम करने का

वादा करेगा।

सिपाहियों ने सोचा था कि अब यह भी यमपुरी जाने में और लोगों की तरह आनाकानी करेगा। मगर वह तो स्वयं मान गया। अगर हम इसका छोटा-मोटा काम कर देंगे तो क्या हर्ज है। वे बोले, ''कहिए, हम आपका काम अवश्य करेंगे।''

मुनीम ने चटपट बही से पन्ना फाड़ कर एक चिट्ठी लिखी और एक सिपाही के हाथ में थमाते हुए बोला, ''यह चिट्ठी यमराज को मेरे यमपुरी पहुंचने से पहले पहुंचा दो। तभी मैं उनके महल में प्रवेश करूंगा। नहीं तो वापस लौट जाऊंगा।''

चिट्ठी महल में पहुंचा दी गयी। यमराज चिट्ठी पढ़ कर सोच में डूब गये। आखिर धर्मराज ने उन्हें क्यों बुलाया है? फिर आजकल मृत्यु मंत्रालय का काम बहुत बढ़ा हुआ था। महामारी विभाग का प्लान विचार एवं स्वीकृति के लिए आया हुआ था।

मुनीम यमराज के महल में पहुंच कर उनकी परेशानी भांप गया और हाथ जोड़ कर बोला, ''महाराज किस चिंता में डूबे हैं? क्या मैं आपकी कोई सहायता कर सकता हूं।''

''हमें धर्मराज ने तत्काल बुलाया है और इधर बहुत-सारे काम फैले हुए है।''

''इसमें चिंता की क्या बात है? आप फौरन धर्मराज के यहां पहुंचिए। मैं सब काम संभाल लूंगा।''

यमराज प्रसन्न हो गये। सोचा, आदमी काम का है। साहसी है। एकदम नया काम संभालने को तैयार हो गया। चलो, इस बहाने इसकी बुद्धि की परीक्षा हो जायेगी। वह बोले, ''तब तक आप यम मंत्रालय को संभालिए। मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा।''

मुनीम ने एक क्षण के लिए गंभीर मुद्रा बनाते हुए कहा, ''मगर महाराज, जब तक मेरे पास आपका अधिकार-पत्र न होगा, तब तक यम मंत्रालय के कर्मचारी मेरा आदेश कैसे मानेंगे! इससे मुझे यहां काम करने में भारी कठिनाई होगी।''

''ठीक है। हम तुम्हें लिखित अधिकार-पत्र जारी कर देते हैं।'' यमराज ने मुनीम के नाम अधिकार-पत्र जारी कर सभी कर्मचारियों को उसका आदेश मानने का हुक्म दे दिया।

दो दिन बाद यमराज वापस लौटे तो यमपुरी के पहरेदारों ने उन्हें बाहर रोक लिया और कहा, "आपके लिए अंदर जाना मना है।"

"क्यों?" यमराज आग-बबूला हो गये—"तुम हमें नहीं जानते! हम यमपुरी के मालिक हैं।"

"साहब, हम क्या करें? हमारे लिए तो वही मालिक है, जो सिंहासन पर बैठा है।" पहरेदारों ने अपनी मजबूरी बतायी, "आप जिस आदमी को सिंहासन पर बैठा गये थे, उसी का आदेश है कि आपको बिना आज्ञा अंदर न आने दिया जाये।"

"अच्छा!" दांत पीस कर यमराज बोले, "उस आदमी के बच्चे से पूछ आओ कि हम अंदर आना चाहते हैं।"

एक सिपाही अंदर जाकर आज्ञा ले आया। यमराज के प्रवेश करते ही मुनीम सिंहासन से उतर कर हाथ जोड़ते हुए बोला, "श्रीमान्, क्षमा चाहता हूं। अब तो आपको आदमी की बुद्धि की परख हो गयी होगी।"

यमराज हैरान रह गये। आदमी ने अपनी बुद्धि से उन्हें यमपुरी से बाहर निकाल दिया था।

चार चतुर सुजान

चार मित्र, चारों चतुर। पर चारों के नाम बड़े सड़ियल। सुमेरू, खचेड़, ननकू और बुद्धू। लेकिन उन्हें अपने घटिया नामों से कोई शिकायत नहीं थी। गांव मे बहुत-से लोगों के नाम उनसे भी गये-गुजरे थे— भिनकू, सिनकू और भी न जाने क्या-क्या।

एक दिन चारों मित्रों ने सलाह की कि दिल्ली की सैर की जाये। उन्होने कभी कोई बड़ा शहर नहीं देखा था। किसी चीज की जरूरत होती तो पास के कस्बे से खरीद लाते। शहर जाने की आवश्यकता ही न होती। बस, चारों चल पडे दिल्ली को।

वे स्टेशन पर पहुंचे। टिकट-घर से टिकट खरीदे। फिर बाबू से बोले "बाबू जी पैसे तो ले लिये, अब गाड़ी भी तो बताओ। कहां खड़ी है रेलगाड़ी?"

टिकट बाबू ने उन्हें आश्चर्य से ऊपर से नीचे तक देखा और फिर हँसता हुआ बोला, "पहले कभी सफर नहीं किया गाड़ी में।"

"ना बाबूजी। हमने तो आज से पहले गाड़ी देखी भी नहीं।"

"प्लेटफार्म पर चले जाओ, वहीं आयेगी गाड़ी।" बाबू ने उन्हें समझाते हुए कहा, "और हां, चढ़ने में ज़रा जल्दी करना। इस स्टेशन पर गाड़ी बहुत थोडी देर रुकती है।"

वे प्लेटफार्म पर आ गये। उनके मन में घुकड़-पुकड़ हो रही थी कि गाडी को पहचान भी पायेंगे या नहीं। न जाने कैसी होती है गाड़ी। वे आपस में गाडी के बारे में बातें करने लगे। उनके पास बैठे एक यात्री ने अनुमान लगा लिया कि वे चारों ही पहली बार रेलगाड़ी से यात्रा करने वाले हैं। वह यात्री स्वभाव से कुछ मजाकियां भी था। उसने चुहल की—"भाई, गाड़ी काली-काली होती है, उसके मुंह से धुआं निकलता है और इन पटरियों पर चलती है।"

"अरे! पटरियों पर कैसे चलती है! नीचे नहीं गिरती!!" उन चारों के मुंह हैरानी से खुले रह गये। यात्री ने सोचा, वास्तव में ये लोग बहुत सीधे हैं। गाडी

आने तक इनसे मजाक कर आनंद लिया जाय वह उंगली उठा कर बोला "वह देखो, गाड़ी आ गयी।"

सामने से रेलवे की नीली वर्दी पहने, सिगरेट का धुआं उड़ाता हुआ पटरियों के बीचोंबीच टोकनमैन आ रहा था। बस अब क्या था, ननकू दौड़ कर उसके कंधे पर चढ़ बैठा। बेचारा टोकनमैन हक्का-बक्का रह गया। वह अभी सोच भी न पाया था कि माजरा क्या है, ननकू के तीनों साथियों ने उसे आ घेरा। वे ननकू से बोले, "अरे ननकू, तू अकेला जायेगा क्या दिल्ली? हमने भी पैसे दिये हैं।"

"भाई, गाड़ी में तो केवल एक सीट खाली है। बाकी दो कहां बैठेंगे?" उसने टोकनमैन के खाली कंधे की ओर इशारा किया।

बुद्धू ने सोचा, क्यों न पहले सीट कब्जा ली जाये। वह छलांग लगा कर टोकनमैन के दूसरे कंधे पर चढ़ बैठा। बेचारा टोकनमैन उन दोनों बोझ न संभाल सका और लड़खड़ा कर गिर गया। बुद्धू और ननकू लाइनों के बीच में लुढ़क पुढक होने लगे। बस देखने वाले सारे यात्री हँसते-हँसते लोटपोट हो गये।

खैर! फिर रेल से वे दिल्ली पहुंचे। दिन-भर घूमते रहे। कभी कुतुबमीनार तो कभी चिड़ियाघर। लाल किला और बिरला मंदिर देखना वे न भूले। दिन छिपने लगा। दफ्तरों की छुट्टी हुई। वे हैरान रह गये। चारों ओर आदमी ही आदमी, सड़कों पर मोटरें-ही-मोटरें। उन्हें सब लोग दौड़ते लग रहे थे। बुद्धू बोला, "अरे! सुमेरा, खचेडू, भाग चलो यहां से। दिल्ली खाली हो रही है।"

वे बिना आगा-पीछा देखे दौड़ने लगे। चौराहे की लाल बत्ती पर उन्हें सिपाही ने रोकने की कोशिश की। मगर वे नहीं रुके। सिपाही ने उन्हें यों दौड़ना देख सोचा, शायद कोई चोर-उचक्के हैं। वह उनके पीछे दौड़ने लगा। सिपाही को अपना पीछा करते देख वे दूनी तेजी से भागने लगे। अब तो सिपाही को उन्हें पकड़ने के लिए शोर मचाना पड़ा, "पकड़ो, पकड़ो, चोर-चोर।"

बस, देखते-ही-देखते चारों ओर से उन्हें लोगों ने घेर लिया। विवश होकर उन्हें रुकना पड़ा। उनकी पिटाई होने वाली थी कि ठीक समय पर सिपाही भी पहुंच गया। उसने भीड़ से उन्हें अलग करते हुए पूछा, "तुम लोग क्यों भाग रहे थे?"

उनकी सांस फूली हुई थी। वह हांफते हुए बोले, "सिपाही जी यहां तो सब ही भाग रहे हैं। हमने सोचा, दिल्ली खाली हो रही है। हमें भी भाग जाना चाहिए।"

उनकी भोली बात पर सारी भीड़ ठहाका लगा कर हँस पड़ी। सिपाही खिसिया गया। वह चौराहे की ओर बढ़ गया। भीड़ भी हँसती हुई इधर-उधर छट गयी। कोड़ियापुल पर पहुंचते-पहुंचते उन्हें अंधेरा होने लगा। उन्हें इस समय भूख सताने लगी थी। सारा दिन सैर-सपाटे करने में गांठ के पैसे खत्म हो गये थे। वे मंगतराम हलवाई की दुकान के सामने खड़े सोच रहे थे कि खाना कैसे खाया जाये? मिठाइयों की भीनी-भीनी खुशबू उनकी भूख और बढ़ा रही थी। एकाएक बुद्धू को एक तरकीब सूझी। वह बोला, "भाई ननकू, लगता है आदमी अंधा है। आओ मिठाई खायें।"

उनकी बात मंगतराम ने सुन ली। वह बोला, "मैं अंधा नहीं, अंधे होगे तुम!"

"बुरा मान गये, भाई!" ननकू ने नम्रता से कहा, "इतनी मिठाइयां तुम्हारे सामने रखी हैं और तुम खा नहीं रहे। हमने सोचा कि तुम्हें मिठाइयां दिखायी नही देती। हमने सोचा, यह नहीं खाता तो चलो हम ही खा लें। मिठाइयां बेकार क्यों की जायें?"

"भाई, अगर मैं ऐसे मिठाई खाऊं तो मेरा दिवाला ही निकल जायेगा। ये तो बेचने के लिए सजायी हैं।" हलवाई बोला।

"यह बात है तो खिलाओ हमें मिठाई।" सुमेरु ने चट से कहा।

"कितनी दूं?" हलवाई ने तराजू पर बाट रखते हुए पूछा।

"चार आदमी हैं। दो किलो से क्या कम दोगे।" खचेड़ू ने कहा।

चारों मित्रों ने भरपेट मिठाई खायी। लेकिन अब पैसे कहां से चुकाये जायें। जेब में तो सिर्फ किराये भर के पैसे हैं। एकाएक बुद्धू की बुद्धि ने काम करना शुरू किया।

उसने ननकू के कान में कुछ फुसफुसाया और बोला, "तुम चिन्ता न करो। भुगतान हो जायेगा।"

उसने हलवाई को सुनाने की गरज से जरा जोर से कहा, "भाई ननकू, जल्दी से पैसे चुकाओ। अभी सोना भी तो खरीदना है।"

सोने का नाम सुन कर लाला मंगतराम के कान खड़े हो गये। उसने सोचा, सोने की दलाली में अच्छे पैसे मिलेंगे। क्यों न इन्हें यहां टिका लूं। मिठाई के पैसे भी सुबह ले लूंगा। वह बोला, "आठ बज रहे हैं। सर्राफा बन्द हो गया है। कल सुबह सोना खरीदना।"

"बहुत बुरा हुआ, हम रात भर रहेंगे कहां?" बुद्धू ने गंभीर हो कहा,

"लाला जी, कोई धर्मशाला बताओ।"

"पैसे का मामला है। धर्मशाला में रहना ठीक नहीं है। आप लोग रात-भर यहीं रहो। सुबह मैं सोना खरीदवा दूंगा।"

वे तो चाहते ही थे कि हलवाई उन्हें अपने यहां ठहरा ले। उन्होंने हलवाई की बात मान ली। मंगतराम ने दुकान में ही उनके सोने का प्रबन्ध कर दिया।

आधी रात टूटने पर चारों मित्रों ने सलाह की—सुबह सोना कहां से खरीदेंगे। पास में तो फूटी कौड़ी नहीं। यह तो रात में ठहरने की तरकीब थी। सुबह को लाला उनकी बड़ी फजीहत करेगा।

काफी सोच-विचार कर उन्होंने दूसरी तरकीब सोची। लाला बेसुध सो रहा था। बुद्धू ने गले में उंगली डाल कर 'हो-हो' करना शुरू कर दिया। उसके साथियों ने लाला को उठाया और बोले, "लाला जी, मिठाई में क्या मिलाया की थी? हमारे साथी की तबियत खराब हो रही है।"

"कुछ भी तो नहीं!" हलवाई ने उत्तर दिया।

तभी बुद्धू ने कच्चे सी आंख निकाली और सांस खींच कर लंबा लेट गया। उसके साथियों ने मंगतराम को पकड़ लिया—"लाला तुम तो कहते हो, मिठाई मे कुछ नहीं था और हमारा साथी मर रहा है। पुलिस स्टेशन किधर है? हम पुलिस को खबर देते हैं।"

पुलिस का नाम सुनकर लाला सिटपिटा गया। वह बोला, "मिठाई तो आप लोगों ने भी खायी थी।"

"तो क्या हुआ, उसे तुमने दूसरे थाल में से मिठाई दी थी। वह खराब थी।"

"नहीं जी, मैं खाकर दिखाता हूं उस थाल में से मिठाई।"

हलवाई गिड़गिड़ाया, ननकू को दया आ गयी। वह बोला, "भला जो होना था हो गया। अब इसे श्मशान पहुंचवाओ।"

बुद्धू को चारपाई पर लिटा कर कपड़ा ओढ़ा दिया दिया गया। वे तीनों मित्र तीन पायों पर लग गये। चौथे पाये को लाला ने कंधा लगाया। वे श्मशान घाट पहुंच गये। दरवाजे पर पहरेदार ने उन्हें रोका और मुर्दा जलाने का दो रुपये टैक्स मांगा, वे हैरान रह गये। शहरों में मुर्दा जलाने के भी पैसे देने पड़ते हैं। सुमेरा बोला, "भाई चौकीदार, यह क्या गजब करते हो! कहीं मुर्दों पर भी टैक्स लगता है! हमारे गांव के श्मशान में चाहो तो सारे शहर को फूंक लो कोई पैसा नहीं लगेगा।"

काफी कहने–सुनने पर भी चौकीदार न माना तो बुद्धू चादर फेंक कर चारपाई से नीचे कूद गया और बोला, "चलो भाइयो, हम यहां मरते ही नहीं ऐसी जगह मरने से क्या फायदा, जहां मरने के भी पैसे देने पड़ते हों।"

बुद्धूराम को यों चारपाई से कूदता और बोलता देख लाला सिर पर पैर रख कर भागा—"बाप रे! भूत!! बचाओ।"

लाला मंगतराम को भागता हुआ देख चारों मित्र जोर–जोर से हँसने लगे—"लाला जी, मिठाई के पैसे तो लेते जाओ।" मगर लाला ने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। सड़क के किनारे बैठे दो–तीन कुत्ते भी उसके पीछे भौंकते हुए दौडने लगे थे।

सजा

कहते हैं, लड़के और बछड़े शरारत करते ही अच्छे लगते हैं। मैं भी बहुत शरारती था। मेरे दोनों सहपाठी रूपचंद और नन्दकिशोर भी शैतान के नाना थे। हम कभी किसी लड़के की किताब छिपा देते और उसे तब तक छकाते रहते, जब तक वह हमारा मुंह मीठा न करवाता या मोटे मोटे आंसू उसके गालों को गीला न करते। कभी-कभी किसी के बिस्तर में कोंच लगा देते और वह सारे शरीर को खुजाता तो उसका तमाशा बना देते। हमारी निगाह से वे लड़के भी न बच पाते, जो बीमारी का बहाना बनाकर नींद निकालने की कोशिश करते। जैसे ही उनकी नाक बजने लगती हम स्याही की दवात लेकर उनकी चारपाइयों के पास पहुंच जाते और सबको लिपस्टिक लगा देते। फिर उन्हें ठंडे पानी के छींटे देकर जगाते है। वे एक-दूसरे की शक्ल देख कर हंसते और हम उन्हें हंसता देखकर मजा लेते। गर्ज यह है कि शैतानी करना हमारी फितरत थी और फितरत के लिए दंड देना सुपरिनटेंडेंट साहब की फितरत थी। हम शैतानी करना नहीं भूलते थे और लड़के शिकायत करने से नहीं चूकते थे।

हम उन दिनों सातवीं कक्षा में पढ़ते थे और रहते थे बोर्डिंग हाउस में। बोर्डिंग हाउस शहर से बाहर चक्कर की सड़क पर था और तीन ओर से घने बागों से घिरा था। थोड़ी दूर पर एक गहरा तालाब था। तालाब में सिंघाड़े खूब होते थे। बड़ी सुंदर जगह थी वह।

बागों में आम-अमरूद की बहार आयी हो या कार्तिक के महीने में तालाब में दूधिया सिंघाड़े तैरते हों। भला रूपचंद और नंदकिशोर की निगाहों से कैसे बच सकते थे! मौका मिलते ही वे बोर्डिंग हाउस से छलावे की तरह गायब हो जाते और लौटते तो उनकी बगल में पोटली दबी होती। वे मेन गेट से न आकर बोर्डिंग हाउस के पिछवाड़े से मुझे पुकारते। मैं खिड़की खोलता और दो चादर जोडकर नीचे लटका देता बस चोरी का माल मैं ऊपर खींच लेता और वे मेन गेट से शरीफों की तरह बाते करते हुए सीढ़ियों के रास्ते ऊपर आ जाते कभी

कभार सुपरिनटेन्डेंट साहब से आमना सामना हो जाता तो वे बड़ी मासूमियत से कह देते कि तालाब पर शौच करने गये थे।

एक-दो बार उन्होंने मुझे भी साथ चलने को कहा। लेकिन अपने राम शरारती तो थे, पर दिलेर बिलकुल न थे। हमने साफ कह दिया, ''न भाई न, मुझे चोरी से डर लगता है।''

''अबे जंगली! खाने-पीने की चोरी चोरी नहीं होती।'' और वे अपनी बात की पुष्टि में भगवान कृष्ण का माखन चुराने वाला उदाहरण पेश करते। हमारे पाठ्यक्रम में सूरदास का पद 'मैया मैं नाहिं माखन खायो' था, जिसका अर्थ सन्दर्भ-सहित हमें हमारे हिन्दी के अध्यापक तोताराम शास्त्री पढ़ाया करते थे।

उनका तर्क सही मानकर भी मेरा दिल गवाही न देता और पकडे जाने के भय से मैं उनके साथ जाने से साफ इनकार कर देता। हम तीनों ने मिलकर तय किया कि जो चीज वे चुराकर लाया करेंगे, मैं पिछली खिड़की से ऊपर खींच लिया करूंगा। बस, हमने पिछली खिड़की के सींखचे निकाल कर ऐसे लगा दिये थे कि जरूरत होने पर उन्हें आसानी से हटाया जा सके।

बात शरारतों तक ही सीमित रहती तो भी गनीमत होती। हमारे बुरे दिन हमें पुकार रहे थे। नंदकिशोर को बीड़ी पीने की बुरी आदत थी। कहते है, आदमी अच्छी बातें देर में और बुरी जल्दी सीख लेता है। धूम्रपान में मैं और रूपचंद भी उसका साथ देने लगे। पहले-पहले दम लगाने से बहुत खांसी उठी थी। आंखों और नाक से खूब पानी चुआ था। सिर चकराने लगा था, लेकिन धीरे-धीरे हमें बीड़ी पीना रुच गया।

दिसम्बर का महीना आ गया। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। छमाही परीक्षा सिर पर थी। जो लड़के कभी किताब को न छूते थे, वे भी पढ़ने में जुट गये। हम भी शरारत करना भूल गये। दिन में पढ़ना, रात में पढ़ना। पढ़ाई के सिवा और कुछ सूझता ही न था।

एक दिन सुबह-सुबह हमने दुमंजिले की छत पर धूप में बैठ कर पढ़ने का प्रोग्राम बनाया। घंटों खूब मन लगा कर पढ़े। फिर हमें बीड़ी की तलब सताने लगी। बीड़ी तो हमारे पास थी, पर माचिस किसी के पास न थी। नंदकिशोर को नीचे मेस में बीड़ी सुलगाने भेजा।

तोताराम शास्त्री उसी कमरे में रहते थे, जिसकी छत पर बैठे हम पढ़ रहे थे और बीड़ी पी रहे थे। बीड़ी पीने के बाद हम फिर पढ़ाई में जुट गये। कुछ देर बाद

नीचे हमारी बगल के कमरों मे रहने वाले लडको ने शोर मचाया आग लग गयी आग लग गयी

हमने नीचे झांक कर देखा तो होश गुम हो गये। तोताराम शास्त्री ने अपना बिस्तर बाहर आंगन में सुखाने के लिए बिछाया हुआ था। रूपचंद ने बीड़ी पीकर बिना बुझाएं फेंक दी थी और जलती हुई बीड़ी हवा के झोंके के साथ सीधी बिस्तर के बीचों-बीच जा गिरी थी।

अब क्या हो? रोटी के बराबर बिस्तर जल चुका था। नीचे वाले लडके पानी डालकर आग बुझा रहे थे।

तोताराम शास्त्री उस समय सुपरिनटेंडैंट साहब से गप्पबाजी करके लौट रहे थे। गैलरी में हमारे सहपाठी यादराम ने उन्हें बिस्तर जलने की बात बता दी और यह भी बता दिया कि हम तीनों उनके कमरे की छत पर बैठे बीड़ी पी रहे थे।

बस, तोताराम जी आगबबूला हो तोते की तरह टें-टें करते आ धमके। तब तक हम तीनों नीचे उतर आये थे। उनका विकराल रूप देखकर हम भय के मारे थर्र-थर्र कांप रहे थे। हमने घोर अपराध किया था। बोर्डिंग के नियमानुसार बीडी-सिगरेट पीना सख्त मना था। इसी लिए तो हम लुक-छिप कर बीड़ी पीते थे। रूपचंद के बच्चे पर गुस्सा भी आ रहा था। सारी मुसीबत की जड़ वही तो है। भला बीड़ी बुझा कर क्यों नहीं फेंकी?

शास्त्री जी काफी देर तक बकझक करते हुए जले बिस्तर को देखते रहे। कितना दुख हुआ होगा उस समय उन्हें, आज जब सोचता हूं तो दिल में पीड़ा सी होती है। कीमती बिस्तर था उनका। ऊनी गलीचे के ऊपर रुई का रेशमी गद्दा, उसके ऊपर दोतही और दोतही के ऊपर कसीदा की हुई बढ़िया चादर और इन सबके ऊपर फैला हुआ सिल्कन लिहाफ।

बात सुपरिनटेंडैंट तक पहुंचेगी तो...तो? मैं ऊपर से नीचे तक सिहर गया। उनकी खाल उधेड़ने वाली शहतूत की कमची आंखों के सामने कैसे के पत्ते सी लहराने लगी। मैंने सहमे-सहमे स्वर में शास्त्री जी से प्रार्थना की—"मास्साहब, हम तीनों मिलकर आपका नुकसान पूरा कर देंगे। हम से गलती हो गयी है।"

तोताराम जी ने भून देने वाली निगाह से हमारी ओर देखा, मगर बोले कुछ नहीं। फिर वह चुपचाप जिधर से आये थे, उधर ही चले गये।

बस, आगत भय से भयभीत हुए हम अपने कमरे में चले गये। दोपहर के भोजन की घंटी बजी, पर खाने को मन नहीं हुआ।

साझ को प्रार्थना के बाद सुपारनटेडट साहब ने हमारे नाम पुकारे— दीपश रूपचद और नदकिशोर आगे आये

नाम पुकारने पर हमारी स्थिति ठीक फांसी के तख्ते पर ले जाये जाने वाले कैदी की तरह हो गयी। घुटने टूट गये। घिसटते-से हम तीनों अन्य लड़को की कतारों से निकल कर सुपरिनटेंडैंट साहब साहब की ओर बढ़े। उनके हाथ मे वही शहतूत की लोद लचक रही थी, जिसकी 'सड़ाक-सांय' से पहले भी क' बार वास्ता पड़ चुका था। लेकिन आज का गुनाह तो ऐसा था कि शायद जिस्म पर खाल ही न बचेगी। तोताराम शास्त्री भी बगल में हाथ दबाये वहीं खड़े थे। मै सोच रहा था, शायद वह बिस्तर की कीमत लेकर मामला रफा-दफा कर देते तो उनका क्या जाता था। हम पिट ही जायेंगे तो क्या बिस्तर ठीक हो जायेगा? पास पहुंचने पर सुपरिनटेंडैंट साहब कड़के—"शास्त्री जी का बिस्तर कैसे जला?"

हम चुप। मानो हमारी चुप्पी ने आग में पेट्रोल डाल दिया। वह फिर गरजे, "मै पूछता हूं, बिस्तरा कैसे जला?"

सुपरिनटेंडैंट साहब की कमची वाला हाथ हवा में उठ गया। मेरी चीख निकल गयी, "मास्सा'ब, अब की बार माफ कर दो। फिर कभी बीड़ी नही पिऊगा।"

इससे पहले कमची मेरी खाल उधेड़ती शास्त्री जी सामने आ गये। मेरे सिर पर हाथ रख कर बोले, "अच्छे बच्चे बनो, गंदी बातें मत सीखो। जाओ, माफ किया। लेकिन फिर कभी। बीड़ी पीते देखा तो सख्त सजा मिलेगी।"

हम पिटने से तो बच गये, पर लज्जा से हमारे सिर झुक गये। उस दिन देर तक नींद नहीं आयी। मैं सोचता रहा था कि शास्त्री जी कितने विशाल-हृदय है और एक हम हैं, जो शैतानी पर दूसरों को दुखी करते हैं। रूपचंद और नदकिशोर ने भी शायद ऐसा ही सोचा था। उस दिन के बाद हमने फिर कभी ऐसी शरारत नहीं की।

बर्फ का फूल

अतुल और अनीता के मामा शिमला में रहते थे। सीता और सतीश उनके ममेरे भाई-बहन थे। उन्होंने पिछले वर्ष अतुल और अनीता को सर्दियों में शिमला आने का निमंत्रण दिया था। उनकी चिट्ठी में सर्दियों में शिमला की सैर का रोचक वर्णन था। आसमान से कैसे बर्फ गिरती है। बर्फ के गोले बनाकर खेलने में कितना आनन्द आता है। बर्फ पर फिसलने और स्केटिंग का तो मजा ही और है। दूर-दूर तक फैली बर्फ से ढकी पहाड़ियों की चोटियां कितनी सुन्दर लगती हैं।

अतुल और अनीता ने यह चिट्ठी कई बार पढ़ी थी। उनकी आंखों के सामने दूर-दूर तक बर्फ की सफेद चादर फैल जाती। आसमान में सावन की फुहार सी बर्फ झरने लगती। सोचते, कितना आनन्द आयेगा बर्फ पर खेलने में। किन्तु उनके पिता उन्हें शिमला ले जाने को राजी नहीं हुए। उनका कहना था, अभी वे बहुत छोटे हैं। अगले वर्ष वे थोड़े और बड़े हो जायेंगे, तब वे स्वयं उन्हें उनके मामा के यहां ले जायेंगे।

इस बार बड़े दिन की छुट्टियों में उनके पिता उन्हें लेकर शिमला पहुंच गये। अभी बर्फ गिरनी शुरू नहीं हुई थी। मौसम साफ था। लगभग दिल्ली जैसा ही। हां, रातें बहुत ठंडी थीं। अतुल और अनीता बहुत निराश हुए। वे दिल्ली से बर्फ पर खेलने का मजा लूटने आये थे। लेकिन यहां ठंडी हवाओं के सिवा कुछ भी नहीं। छुट्टियां खत्म होने वाली हैं और मामाजी कहते हैं कि इस बार बर्फ देर से गिरेगी। हो सकता है, एक-दो दिन में गिरने लगे।

हुआ भी ऐसा ही। एक दिन दोपहर से ही आसमान रंग बदलने लगा। हवा तेज चलने लगी। दिन छिपते-छिपते बादल पहाड़ों की चोटियां चूमने लगे। लोगों ने खिड़की-दरवाजे बन्द कर लिये। अतुल और अनीता को वह दृश्य बड़ा मनोरम लग रहा था। वे खिड़की खोल कर पहाड़ियों में टकराते बादलों को देखकर बड़े प्रसन्न हो रहे थे। तभी मामाजी ने आकर खिड़की बंद करते हुए

कहा खिडकी मत खोलो बेटे बादल कमरे मे भर जायेंगे और सारी चीजें गीली हो जायगी

रात होते ही घनघोर वर्षा होने लगी मामाजी ने बताया कि आज बर्फ अवश्य गिरेगी। अतुल और अनीता बहुत खुश हुए। अब वे बर्फ पर खेलने का आनन्द ले सकेंगे। मामीजी ने घर भर के लिए स्वादिष्ट व्यंजन बनाये। सबने भरपेट खाया और बिस्तरों में दुबक गये।

दिन निकला। बारिश बंद हो चुकी थी। लेकिन आकाश साफ नहीं था। बादल छाये थे। लगातार बर्फ गिर रही थी। दूर-दूर तक बर्फ का बिछौना बिछ गया था। पहाड़ी पेड़ों की टहनियों पर टंगी बर्फ दूर से देखने में ऐसी लग रही थी, मानो उनमें सफेद फूल खिले हों। अतुल और अनीता इस प्राकृतिक सौंदर्य पर मुग्ध थे। उनका मन हो रहा था कि वे बाहर जाकर बर्फ पर खूब उछले-कूदे। मगर बर्फ रुकने तक उन्हें बाहर जाने की अनुमति नहीं मिली।

अगले दिन बर्फ गिरनी बन्द हो गयी। आसमान साफ तो नहीं हुआ, मगर सुहावना हो गया। गली-मुहल्लों के बच्चे बर्फ पर स्केटिंग के लिए निकल पडे। सीतेश और सीता भी अतुल और अनीता को साथ लेकर बच्चों में मिल गये। बर्फ पर थिरकती बच्चों की टोलियां दूर से देखने में ऐसी लगती थीं, मानो बर्फ मे फूल खिले हों।

स्केटिंग शुरू हुई। दो-दो, तीन-तीन बच्चे एक साथ हाथ पकड़ कर बर्फ पर फिसलने लगे। कोई-कोई अकेला ही हवा में चील के पंखों की तरह हाथ खोल स्केटिंग कर रहा था। अनीता और अतुल उन बच्चों को कौतूहल से देख रहे थे। सीता और सीतेश के आग्रह पर उन्होंने भी स्केटिंग करनी चाही, मगर चल नहीं पाये। वे गिर-गिर जाते थे। सीतेश बोला, "पहले ये लोग स्केटिंग कर ले। बाद में तुम्हें सिखायेंगे। तब तक तुम दूसरे बच्चों के साथ बर्फ पर खेलो।"

अतुल कुछ देर अनीता के साथ खेलता रहा। किन्तु उसका मन तो स्केटिंग करते बच्चों में अटका था। वह अनीता को खेलता छोड़ स्केटिंग करने वाले बच्चों की टोलियों को देखने लगा। वे कैसे पहियों पर शरीर साधते हैं, कैसे चलते हैं।

अनीता खेलती हुई दूर निकल गयी। एकाएक बच्चे चिल्लाने लगे, "बचाओ, बचाओ।"

सारे बच्चे उस ओर दौड़े। बर्फ का एक बहुत बड़ा टुकड़ा टूट कर धीरे धीरे नीचे खड्ड की ओर फिसल रहा था। उस पर खड़ी अनीता सहायता के लिए

चिल्ला रही थी अतुल और सातेश वहा पहुच चुके थ मगर अनीता को पकड़ना सम्भव न था। बर्फ का टुकड़ा काफी हट चुका था और बीच में गहरा फासल बन गया था। वे सांस रोक कर लाचार से खड़े हो गये। अब क्या किया जाये तभी बर्फ के टुकड़े ने रास्ता बदलना शुरू किया। अतुल को समझते देर न लगी कि बर्फ का टुकड़ा दूसरी ओर की चट्टान से टकरा कर ही नीचे खड्ड में गिरेगा वह एक क्षण खोये बिना उस ओर भागा। उसके पीछे सीतेश और अन्य बच्चे भी दौड़े। अतुल का अनुमान सही निकला। जैसे ही टुकड़ा चट्टान के निकट आया, उसने हाथ बढ़ा कर अनीता को पकड़ना चाहा। लेकिन बर्फ का वह टुकड़ा तेजी से खड्ड में गिर गया। अतुल के हाथ में अनीता की फ्रॉक आ गयी थी। वह मजबूती से फ्रॉक पकड़ कर नीचे बैठ गया। उसने पैर बर्फ में गड़ा लिये। तब तक सीतेश भी अन्य बच्चों के साथ वहां आ पहुंचा। उन सबने मिल कर अनीता को ऊपर खींच लिया।

अनीता बहुत घबरा गयी थी। उसकी आंखें बंद थीं। अतुल और सीतेश न बड़ी मुश्किल से उसे विश्वास दिलाया कि वह बचा ली गयी है। थोड़ी देर मे वह स्वस्थ हो गयी। दिन छिपने लगा था। सब बच्चों ने घर की राह ली। अतुल और अनीता ने पीछे मुड़कर देखा। दूर-दूर तक बर्फ फैली थी, किन्तु वृक्षों की टहनियों पर लदे बर्फ के फूल झर चुके थे—ठीक उनकी खुशियों की तरह।

टेडू और टर्र

मुम्बई के एक तालाब में टेडू मेंढक रहता था और दिल्ली की एक पुरानी बावड़ी नें टर्र नाम का दूसरा मेंढक। वे दोनों केवल अपने-अपने शहरों को ही अच्छा, बड़ा और सुन्दर समझते थे। सही बात तो यह थी कि दोनों ने कोई दूसरा शहर देखा ही न था।

एक बार दिल्ली की मैना अपनी सहेली से मिलने मुम्बई आयी। मुम्बई वाली मैना ने उसका शानदार स्वागत किया। दिन-भर शहर की सैर करायी। अच्छा खाना खिलाया और पानी पिलाने के लिए उसे टेडू वाले तालाब पर ले गयी। दिल्ली वाली मैना ने जी भर कर पानी पिया और फिर दोनों सहेलियां बातो मे लग गयीं।

दिल्ली वाली मैना ने अपने शहर की बड़ी प्रशंसा की। उसने बताया कि दिल्ली अब पुराने जमाने की दिल्ली नहीं रही। वह खूबसूरत शहर बन गयी है, और उसने अपनी सहेली को दिल्ली आने का निमंत्रण दिया।

टेडू ने उनकी बात सुनी तो उसका मन भी दिल्ली देखने को ललचा गया और वह दिल्ली यात्रा की तैयारी करने लगा। इसके बाद दोनों मैना दिल्ली पहुच गयीं। दिन-भर घूमने के बाद वे पानी पीने टर्र वाली बावड़ी पर आयीं।

पानी पीने के बाद बावड़ी के किनारे हरी-हरी घास पर आराम करते हुए मुम्बई वाली मैना अपने शहर की तारीफ के पुल बांधने लगी। उसने होंठ बिचका कर कहा, "दिल्ली पहले से सुन्दर तो हो गयी है, पर मुम्बई वाली शान कहां? न यहां वह दूर तक फैला समुन्दर है, न कोई फिलम स्टूडियो है और न ही बिजली मे चलने वाली ट्रेन है।"

और भी न जाने क्या-क्या ढेर सारी तारीफ की उसने। टर्र बावड़ी की दीवार से चिपका उनकी बातें सुन रहा था। उसके मन में भी मुम्बई देखने की इच्छा हुई और वह भी मुम्बई जाने की तैयारी में लग गया।

एक दिन टेडू और टर्र ने अपनी-अपनी यात्रा शुरू कर दी। कई दिन चलने

के बाद वे विंध्याचल पर्वत की चोटी पर आमने सामने आ गये टेडू ने टर्र को और टर्र ने टेडू को बड़े प्रेम से देखा। उन्हें एक-दूसरे से मिल कर बहुत प्रसन्नता हुई। दोनों ने एक-दूसरे का अभिवादन कर पिछले पैरों पर खड़े हो हाथ मिलाये

टेडू ने पूछा, "आप कहां जा रहे हैं?"

"मुम्बई," टर्र ने उत्तर दिया।

टर्र ने भी वैसे ही प्रश्न किया, "श्रीमानजी, आप कहां की सैर करने चले?"

"दिल्ली," टेडू ने उत्तर दिया।

वे पहाड़ की ऊंची चोटी पर अपने-अपने पिछले पैरों पर खड़े थे। उनकी आंखें गरदन पर होने के कारण दिल्ली वाले को दिल्ली और मुम्बई वाले को मुम्बई दिखायी दे रही थी। टेडू ने सोचा, दिल्ली तो बिलकुल मुम्बई जैसी है और ऐसी ही बात टर्र के दिमाग में आयी कि मुम्बई में कोई नवीनता नहीं लगती ठीक दिल्ली जैसी है।

"भाई, मैं तो अब दिल्ली नहीं जाऊंगा। मुम्बई जैसा ही शहर है दिल्ली" टेडू ने कहा।

"मैं ही मुम्बई जाकर क्या करूंगा? बम्बई भी तो दिल्ली जैसी है," टर्र ने भी आगे न जाने की इच्छा प्रकट की।

और फिर दोनों हँसते हुए अपने-अपने शहर को लौट गये।

वे सोच रहे थे, बेकार सफर करने से बच गये। दोनों शहर एक जैसे ही तो हैं।

सच है, पीछे देखने वाले कभी जीवन में आगे नहीं बढ़ते।

सुबह का भूला

दिनेश ने अपनी किताबों की अलमारी के एक खाने को मन्दिर बना लिया था। वह सुबह उठता। ठंडे पानी से स्नान करता। फिर मूर्ति के सामने धूप-बत्ती जला कर घंटों पूजा करता। घंटी बजाता। तब कहीं नाश्ता करता उसके पिता जानकी बाबू हैरान थे कि उसमें इतना परिवर्तन अचानक कैसे आ गया। किसने उसे यह राह दिखायी! अभी उसकी उम्र ही क्या है, कुल तेरह वर्ष! पढ़ने की उम्र है। यदि वह अभी से पूजा-पाठ में व्यस्त रहने लगेगा, तो पढ़ाई का क्या होगा? उन्होंने एक-दो बार दिनेश को समझाया भी—"बेटे, सुबह-शाम भगवान का नाम लेना ही तुम्हारे लिए काफी है। यों पूजा-पाठ में लगे रहने से तुम्हारी पढाई में हर्ज होगा।"

मगर दिनेश की समझ में उनकी बात नहीं आयी। वह उसी तरह घंटों-घंटों ध्यानमग्न बैठा रहता। जब पिताजी के समझाने-बुझाने का उस पर कोई प्रभाव न हुआ तो उन्होंने धीरे-धीरे कहना ही बंद कर दिया। वह जानते थे कि यह बाल-हठ है, जिसके सामने कुछ भी कहना व्यर्थ है।

जानकी बाबू कारखाने में साधारण से टाइमकीपर थे। बेहद मेहनती और ईमानदार। कारखाने में तीन पारियों में काम होता था। इसलिए वह दिनेश की पढाई पर पूरा ध्यान नहीं दे पाते थे। कभी-कभी तो ऐसा होता कि जब वह घर होते तो दिनेश स्कूल में होता और जब दिनेश घर होता तो जानकी बाबू रात की ड्यूटी की नींद निकालते होते। फिर भी वह थोड़ा-बहुत समय निकाल कर दिनेश का घर का काम देख लेते। किताब याद करा देते। पिछला पाठ सुन लेते।

दिनेश सदा अपनी कक्षा में प्रथम आता रहा था। यही कारण था, जानकी बाबू को उस पर पूरा भरोसा था कि वह पढ़ने में लापरवाही नहीं करेगा। कभी कभी अपने साथियों में बैठकर वह कहते भी थे कि उनका बेटा पढ़-लिख कर एक दिन बड़ा आदमी बनेगा। पर जैसे-जैसे दिनेश कक्षाओं की सीढ़ियां चढ़ने लगा, उसके मित्रों की संख्या बढ़ने लगी और छठी कक्षा तक पहुंचते-पहुचते

उसकी मित्र-मण्डली काफी बड़ी हो गयी। उसके मित्रों में अधिकतर वे बच्चे थे जो पढ़ने में कमजोर और शरारतों में तेज थे। अथवा 'खेलेंगे-कूदेंगे तो बनेंगे नवाब' की उक्ति में विश्वास रखते थे। वह दिन-भर गली-मुहल्ले में उनके साथ खेलता, शरारतें करता और कोशिश करता कि जानकी बाबू के सामने घर ही न जाये। जानकी बाबू सोचते कि बेटा दोस्तों के यहां पढ़ाई करने जाता है। परिणाम यह हुआ कि दिनेश भी साधारण छात्रों की श्रेणी में आ गया। छमाही परीक्षा में उसने बहुत कम अंक प्राप्त किये थे। पिताजी के नाराज होने के भय से उसने अपनी प्रगति-पुस्तिका अलमारी में छिपाकर रख दी थी और जानकी बाबू से झूठ बोल दिया था कि बस्ते में से गुम हो गयी है।

वह रोज बिस्तर पर लेट कर सोचता कि कल से खेलना बंद कर पढ़ने मे जुट जायेगा। मगर अगले दिन वह रात की बात भूल जाता और अपनी चाण्डाल-चौकड़ी के साथ धमा-चौकड़ी मचाने में मस्त हो जाता। उसकी आंख खुली तब, जब एक दिन उसके कक्षा-अध्यापक ने पाठ समाप्त करते हुए कहा, "आप लोगों का कोर्स पूरा हुआ। अब वार्षिक परीक्षा की तैयारी में जुट जाओ। कोर्स को दोहराओ-तिहराओ। जो बात समझ में न आये, उस पर निशान लगा लो और हमसे पूछ कर याद कर लो।"

दिनेश की सिट्टी-पिट्टी गुम! उसे कुछ भी याद न था। वह पढ़ता ही कहां था, जो याद होता। स्कूल से छुट्टी हुई नहीं कि गुल्ली-डंडा हाथ में अथवा क्रिकेट का बैट उठा कर पहुंच गया खेल के मैदान में। अब क्या हो? बड़ा परेशान। करे, तो क्या करे? फेल होकर उसकी कितनी भद्द होगी। उसे साझ को रोटी अच्छी नहीं लगी। उसे अनमना देख मां ने कारण जानना चाहा, तो कह दिया, "तबियत ठीक नहीं है।"

वह दिन छिपते ही बिस्तर में दुबक गया। मुंह ढांप कर सोचता रहा कि फेल होने पर पिताजी को कैसे मुंह दिखाऊंगा। उन्हें कितना दुख होगा। उसकी आखें छलछला आयीं। कभी वह हनुमान जी का प्रसाद बोलता, तो कभी किसी देवी-देवता की मनौती मानता। एकाएक उसे ध्यान आया कि लोग कहते है, भगवान सबकी सहायता करते हैं। क्यों न मैं भी भगवान की पूजा किया करूं। फिर, बच्चे तो भगवान को प्यारे होते हैं! वह मुझे जरूर पास करा देंगे। बस, उसने अपनी किताबों की अलमारी में मन्दिर बना कर पूजा-पाठ करना शुरू कर दिया

चारों और अगणित सूर्यों का प्रकाश फैलता गया सब दिशाओं से हल्का

हल्का मधुर संगीत फूट रहा था। बागों में कोयल कुहुक रही थी। पेड़-पौधो मे रंग-बिरंगे फूल खिल रहे थे। तभी भगवान की ज्योतिर्मय आकृति प्रकट हुई। दिनेश हाथ जोड़कर भगवान के पैरों में गिर गया और रोकर बोला, "भगवान, मुझे क्षमा करो। मैंने पूरा साल खेल-कूद में खो दिया है। अब कैसे पास होऊंगा। प्रभु! बस इस बार पास करा दो। फिर कभी ऐसी गलती नहीं करूंगा।"

भगवान के कोमल पंखुरियों से होंठों पर हल्की-सी मुसकान फैल गयी। उन्होंने दिनेश के कंधे थपथपाये और कोमल स्वर में बोले, "पुत्र, घबराओ नही। जरूर पास होओगे। पर ऐसे नहीं।"

"फिर कैसे?" दिनेश ने हथेली से आंसू पोंछ कर पूछा।

"अभी समय है। मेहनत करो। मेहनत कभी विसफल नहीं होती। जो लोग मेहनत से जी चुराते हैं, और मेरी पूजा कर सफलता चाहते हैं, वे कभी सफल नहीं होते। वह मुझे भी अपनी दुनिया का आदमी समझ कर प्रसाद की रिश्वत देते हैं और पूजा-पाठ का ढोंग कर मेरी चापलूसी करते हैं। ऐसे लोगों की मैं कभी सहायता नहीं करता।" कहकर भगवान हँसने लगे और प्यार से दिनेश के गाल सहला कर आगे बोले, "तुम ही सोचो दिनेश बेटे, भला मैं कोई ऐसा-वैसा आदमी हूं, जो प्रसाद खा कर पटाने में आ जाऊं! बस, अब तो समझ गये होगे कि मैं उनकी ही सहायता करता हूं, जो मेहनत करते हैं।"

इतना कह कर भगवान अन्तर्धान हो गये और दिनेश की आंख खुल गयी। बाहर आंगन में खड़े उसके पिताजी कह रहे थे, "दिनेश की मां, मुझे सब पता लग गया है, दिनेश पूजा-पाठ क्यों करता है। वह हमें धोखा दे रहा है, अपने को धोखा दे रहा है और पूजा-पाठ कर भगवान को धोखा दे रहा है। यह देखो उसकी रिपोर्ट-बुक, जो उसने अलमारी में छिपा कर कह दिया था, खो गयी है। मुझे दफ्तर के जरूरी कागज ढूंढ़ते हुए मिली है। छमाही इम्तहान में सिर्फ पास होने भर के नम्बर आये हैं। अब साहबजादे को फेल होने का डर है, तो लगे भगवान के सामने टल्ली बजाने।"

दिनेश को अपनेआप पर बहुत ग्लानि हुई। वह बिस्तर छोड़कर सीधा आंगन में गया और पिताजी के पैर छूकर बोला, "पिताजी मुझसे भूल हो गयी थी। अब कभी ऐसी गलती नहीं करूंगा। खूब मेहनत से पढूंगा।"

"शाबाश बेटे! सुबह का भूला शाम को घर आ जाये, तो उसे भूला नही कहते।" कह कर जानकी बाबू ने उसकी पीठ थपथपायी। उस दिन के बाद दिनेश दिन-रात पढ़ने में जुट गया और फिर अपनी कक्षा में ही नहीं, अपितु पूरे स्कूल में प्रथम आया।

एक प्याला ईमानदारी

मौलाना मुस्तफा निहायत ईमानदार व्यक्ति थे; पर जितने वह ईमादार थे, उतने ही गरीब थे। दो जून रोटियां जुटा पाना भी उनके लिए मुश्किल था। कई कई दिन तक रोजे रखने पड़ जाते थे। उनकी पत्नी नसीबन अड़ोस-पड़ोस से उधार ले कर काम चलाती। लेकिन अब तो उधार मिलना भी कठिन हो गया था। जिसका लाती, लौटा न पाती। फिर कौन दे रोज-रोज उधार। पड़ोसिनें नसीबन को आता देख पहले ही मुंह सुजा लेतीं। बस, नसीबन की हिम्मत न होती कि उनसे अपने आने का कारण बता कर उधार मांग ले।

एक दिन पड़ोसी खुदाबख्श की मुर्गी मुस्तफा की दीवार पर आ बैठी। मुर्गी को देख कर नसीबन के मुंह में पानी भर आया। घर में कई दिनों से सब्जी नहीं बनी थी। रूखी-सूखी रोटियां खाते-खाते मन ऊब गया था। उसने सोचा, क्यों न मुर्गी पका ली जाये। वह चुपचाप दबे पैरों दीवार के साथ मुर्गी तक पहुंची और चट से उसे पकड़ लिया। बेचारी मुर्गी चूं भी न कर सकी और नसीबन की हांडी में पक गयी।

शाम को मुस्तफा घर आये और खाना खाने बैठ गये। नसबीन ने डर के मारे चोरी की मुर्गी उसे न परोसी। सोचा, चोरी की बात सुन कर मुस्तफा नाराज हो जायेंगे। मुस्तफा रूखी रोटी खाने लगे। बिना सालन रोटियां गले में अटकतीं तो पानी के घूंट से टुकड़ा नीचे उतारते। एकाएक वह नसीबन से बोले, "आज भी कोई सब्जी नहीं पकायी?"

"पकायी तो है," नसीबन ने डरते-डरते कहा, "मगर आप तो खायेंगे नहीं।"

"क्यों?" मुस्तफा ने हैरानी से पूछा।

"मैंने खुदाबख्श की मुर्गी चुरा कर बनायी है।"

"लाहौल।" मुस्तफा ने कानों को हाथ लगाया, मानो पत्नी के इस गुनाह की तौबा की हो। उन्हें पत्नी की चोरी पर बहुत गुस्सा आया। लेकिन मुर्गी के

मास का जायका याद आ जान से रूखी रोटी खाना मुश्किल हो गया कौर गले स नीचे उतारने म दिक्कत होने लगी मगर मुर्गी का गोश्त मागते शर्म लगती थी। भला जिस काम को वह बुरा समझते हो, उसी काम से पकायी मुर्गी को कैसे खा सकते हैं! उनका ईमानदारी का उसूल टूट जायेगा। आखिर रोटी निगलते-निगलते उन्हें एक तरकीब सूझी। बोले, "बेगम मुर्गी पकाते समय पानी तो अपने नल का इस्तेमाल किया होगा।"

"जी।" पत्नी ने छोटा-सा उत्तर दिया।

"तो फिर शोरबा लेने में क्या गुनाह है। तुम मुझे एक प्याली शोरबा दो।" मुस्तफा ने सफाई दी।

पत्नी मन-ही-मन मुसकरायी और उसने एक प्याली शोरबा भर कर दे दिया। मुस्तफा ने बहुत दिन बाद मुर्गी का शोरबा चखा था। उन्होंने खूब भरपेट भोजन किया। इस प्रकार ईमानदारी के एक प्याला शोरबे ने उनका उसूल टूटने से बचा लिया और उन्होंने मुर्गी के मांस का आनंद भी ले लिया।

निडर बालक

एक जंगल में एक बड़ा तालाब था। उस तालाब के किनारे की एक झोंपड़ी में एक गरीब औरत रहा करती थी। उसके सुमंत नामक एक लड़का था। मां ने अपने लड़के को बड़े ही लाड़-प्यार से पाला-पोसा।

एक दिन रात को मां और बेटा अपनी झोंपड़ी में आराम से सो रहे थे। अचानक आंधी और वर्षा के साथ बिजली का कड़कना भी शुरू हो गया। आंधी-वर्षा की आवाज सुन कर मां जाग गयी। उसने अपने बेटे को जगा कर कहा, "बेटा, मुझे तो डर लगता है, तुम खिड़कियां बन्द कर दो।"

सुमंत नींद से जाग पड़ा। आंखें मलते हुए उसने अपनी मां की बातें सुनी। उसने 'डर' नामक शब्द पहली बार अपनी जिंदगी में सुना था। इसलिए उसने पूछा, "मां, मैं खिड़कियां तो बंद कर लूंगा, लेकिन यह बताओ, 'डर' का मतलब क्या होता है?"

मां ने अपने बेटे की इस सवाल का कोई जवाब नहीं दिया। वह यह सोच कर फिर सो गयी कि इस छोटे लड़के को क्या समझाये! वह वास्तव में इस सवाल का जवाब भी दे नहीं सकती थी।

इस पर सुमंत के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी कि 'डर' क्या होता है? इसे जरूर देखना चाहिए।

यों विचार करके सुमंत ने धीरे से किवाड़ खोल दिये और घर से बाहर चल पड़ा। वह उस अंधेरी रात में, आंधी-वर्षा में, जंगल के बीच अकेले ही यों चिल्लाते भटकने लगा, "हे डर! तुम कैसे हो? कहां रहते हो? मैं तुम्हें देखना चाहता हूं। मेरे सामने आ जाओ।"

"बेटा, तुम आ गये? झुला न पकड़ने की हालत में मैं परेशान हो किसी का इन्तजार कर रही थी। तुम मुझे अपने कंधों पर खड़े हो जाने दो, तो झूले से मैं अपने बच्चे को उतार दूंगी!" यों कोई जवाब सुनायी दिया।

सुमंत वहां से चल पड़ा। एक मकान के भीतर घुस पड़ा। वहां पर उसने

देखा एक औरत खड़ी हुई है। शहतीर से एक झूला झूल रहा है।

वास्तव में वह मानवी न थी, राक्षसी थी। यह बात मालूम न होने की वजह से सुमंत ने उस औरत को अपने कंधों पर चढ़ा लिया। राक्षसी ने अपने पैरो से रौंद कर सुमंत को मार डालना चाहा। इस पर सुमंत नाराज हो गया और उसने राक्षसी को इस तरह खींचा कि वह नीचे गिर गयी।

वह राक्षसी झटके खा कर तेजी से औंधे मुंह जमीन पर गिर गयी, जिससे उसके दो लंबे-लंबे दांत टूट गये। वह पीड़ा के मारे चीखते-चिल्लाते वहा से भाग खड़ी हुई।

इसके बाद सुमंत उस घर से बाहर आया, तब तक सूरज निकल आया था। आंधी-वर्षा थम गयी थी। वह थोड़ी दूर और आगे बढ़ा।

एक जगह ऊंची-ऊंची पहाड़ी शिलाओं पर बैठे चार-पांच चोर उसे दिखायी दिये। उन लोगों ने सुमंत को देख पूछा, "भाई तुम कौन हो? यहां पर चिड़िया तक उड़ कर आने से डरती है। राजा की सेना भी इस ओर झांकने तक से डरती है। तुम निडर होकर हमारी तरफ बढ़े चले आ रहे हो? क्या तुम्हे अपनी मौत का भी डर नहीं होता?"

"मैं इसी खयाल से चला आ रहा हूं कि आखिर देख तो लूं कि वह 'डर' कैसा होता है?" सुमंत ने झट से जवाब दे दिया।

यह जवाब सुन कर चोर हँस पड़े। उन लोगों ने एक तवा, चिमटा और चूल्हा उसके हाथ देकर कहा, "देखो, उन घने पेड़ों के बीच जो श्मशान है, उसमें जा कर इस आटे से एक रोटी बना कर इसी वक्त लेते आओ, तब तुम्हे खुद मालूम होगा कि डर क्या चीज होता है? समझे!"

सुमंत ने मान लिया। श्मशान में जा कर उसने चूल्हा जलाया, तवे पर रोटी सेकने लगा। तभी बगल की समाधि में से कोई बड़ा हाथ बाहर निकला और कहा, "सुनो भाई, मुझे भी तो रोटी का स्वाद चखवा दो न?"

काम में डूबा सुमंत यह जवाब सुन कर खीज उठा और उसने डांट कर कहा, "हूं, तुम्हें रोटी का स्वाद चखवाना है? जिंदा लोगों की भूख मिटाने के पहले मैं तुम्हारी भी भूख मिटा देता हूं!" यों कह कर हाथ का चिमटा सुमंत ने समाधि से ऊपर उठे हाथ पर दे मारा; फिर क्या था, चोट खा कर वह हाथ उसी वक्त समाधि के अन्दर चला गया।

इसके बाद सुमंत रोटी सेंक कर चोरों के पास लौट आया और उन्हें सारी बात समझा दी। चोर सुमंत की निडरता देख घबरा गये।

"भाई, हम तो तुम्हें 'डर' को नहीं दिखा सकते, मेहरबानी करके तुम

जल्दी यहा से चले जाओ तुम्हारा पुण्य होगा। हम यो ना जान दो यो चोर गिडगिडाने लगे

इसके बाद सुमंत वहा से फिर चल पड़ा। थोड़ा दूर और जाने पर एक बूढ़ी दिखाई दी, उसने पूछा "बेटा, तुम क्यों यों जंगल में भटकते हो? तुम किस गांव के रहने वाले हो? क्या काम करते हो?"

सुमंत ने सारा वृत्तांत सुना कर कहा, "नानी, 'डर' कैसा होता है? यही देखने मैं घर से निकला हूं, लेकिन अभी तक मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई।"

इस पर बूढ़ी हँस कर बोली, "तुम्हारे जैसी मेरी भी एक धेवती है, मेरे साथ चलो, शायद वह तुम्हारी इच्छा की पूर्ति कर सके।" यों समझा कर बूढ़ी सुमंत को अपने घर ले गयी।

नानी की पोती बड़ी चतुर थी। सुमंत की सारी कहानी सुन कर उसने एक उपाय किया। खाने का वक्त हो गया था, इसलिए सुमंत को खाना परोस कर वह थोड़ी दूर खड़ी हो गयी, लेकिन जब सुमंत खाने का एक कौर मुंह में रखने जा रहा था, तब वह बोली, "थोड़ा रुक जाओ, तरकारी का मटका लाना भूल गयी हूं।" यों कह कर वह रसोईघर के भीतर चली गयी और एक बहुत बड़ा मटका लेकर उसने सुमंत के सामने रखा।

सुमंत ने तरकारी परोसने के खयाल से मटके का ढक्कन खोला। दूसरे ही क्षण मटके के अन्दर से 'टप'-'टप' की भयंकर आवाज सुनायी दी, सुमंत 'आ' चिल्ला कर डर के मारे पीछे की ओर लुढ़क पड़ा। मटके के अन्दर एक गौरैया पक्षी बन्द था, वह फुर्र से बाहर उड़ कर चला गया। डर का पता न रखने वाला सुमंत उस गौरैया की ओर देखता रह गया।

नानी की पोती ने खिल-खिला कर हँसते हुए पूछा, "अब जान गये हो न कि 'डर' कैसा होता है?"

सुमंत को सच्चाई माननी पड़ी। वह बोला, "हां, अब मुझे मालूम हो गया कि डर क्या होता है? अब मैं अपनी मां के पास चला जाऊंगा। तुम दोनों भी मेरे घर चलोगी तो मेरी मां बहुत खुश होगी।" यों कह कर वह उठ खड़ा हुआ।

नानी और धेवती को किसी पुरुष का सहारा न था, इसलिए वे दोनों सुमंत की इच्छा पर उसके साथ चल दीं। सुमंत की मां बहुत खुश हो गयी। वे सब एक ही परिवार के रूप में अपने दिन काटने लगे। सुमंत भी अब दिल लगा कर काम करता और अच्छा आदमी कहलाता।

थोड़े दिन बाद सुमंत और नानी की चालाक धेवती का विवाह हुआ और वे चैन से रहने लगे।

लोक कथा खंड

बंजारा

बहुत दिनों की बात है, लक्खी नाम का एक बंजारा था। वह बहुत धनवान था। उसका बैलों का व्यापार था। बड़े-बड़े जमींदार और छोटे-छोटे किसान सभी उससे बैल खरीदते थे। नकद धन न होने पर वह सभी को उधार बैल भी देता था, और फसल में अपना पैसा वसूल कर लेता था। इस प्रकार उसका व्यवसाय दिन-दूनी तरक्की कर रहा था। उसकी उदारता का सब लोग आदर करते थे।

कुछ दिनों के बाद उसके दुर्दिन आये। बैलों को चोर चुरा ले गये। देश मे अकाल पड़ जाने से किसानों से उगाही न हो सकी। सबको उधार देने वाला अब स्वयं गरीब हो गया। व्यापार डूब जाने से उसकी साख गिर गयी। उसे स्वयं भी उधार मांगने में लज्जा आती थी। अंत में उसे एक उपाय सूझा। क्यों न अपने कुत्ते मोती को किसी सेठ के यहां गिरवी रख कर कुछ रुपया ऋण ले ले। मोती उसे अपनी जान से प्यारा था। उसने मोती को अपने हाथों दूध पिला कर बडा किया था। मोती अपने मालिक के साथ छाया की भांति रहता था। वह रात को लक्खी की चौकसी करता। लक्खी के साथ वह बच्चों की भांति खेलता। लक्खी उसे अपने बेटे जैसा मानता था। वह उसे अपने से अलग नहीं करना चाहता था। विवश हो उसने मोती को एक सेठ के यहां गिरवी रख दिया। धन लेकर चलते समय लक्खी की आंखों में आंसू आ गये। सेठ ने मोती को जंजीर मे बांध दिया। वह चुपचाप उदास बैठा रहा।

मोती को सेठ के यहां रहते कई वर्ष बीत गये। उसने कभी अपने नये मालिक को परेशान नहीं किया। वह सेठ के बच्चों से घुल-मिल गया। जब वे शाम के समय मोती को अपने साथ सैर कराने बाग में ले जाते तो वह उनके साथ खूब खेलता। बच्चे उसको घोड़ा बनाते तो वह बिलकुल न गुर्राता। रात को वह घर की रखवाली करता। कभी किसी अजनबी आदमी को घर में न घुसने देता। सेठ भी उसकी आदतों से बड़ा प्रसन्न था। कभी मोती बीमार हो जाता तो उसकी देखभाल का खूब ध्यान रखा जाता। उसको अच्छे-अच्छे भोजन दिये जाते

और दवाइयों का प्रबन्ध किया जाता।

एक दिन रात में जब सब लोग ऊपर छत पर सोये हुए थे और सेठ किसी काम से बाहर गया हुआ था, घर में चोर घुस आये। मोती पहले तो बहुत भौंका किन्तु किसी की नींद न खुलने पर वह चुप हो गया। चोर माल चुरा कर जाने लगे तो मोती भी चुपचाप उनके साथ चल पड़ा। शहर से बाहर आने पर चोरों ने देखा कि दिन निकल आया है और लोग जाग गये हैं। पकड़े जाने के भय से उन्होंने सारा माल एक तालाब में डाल दिया। मोती यह सब देख कर घर लौट आया।

घर में सब लोग जाग गये थे। चोरी की बात सुन कर पास पड़ोसी इकट्ठे हो गये। सेठ को बुलाने नौकर भेज दिया गया। चोरी हो जाने से सभी दुखी हो रहे थे। मोती बेचारा बोलना तो जानता न था, फिर कैसे बताता कि माल कहां छिपा है? वह लोगों के कपड़े खींचता और बाहर की ओर दौड़ता। उसकी बात कोई न समझ पा रहा था। उसे लोग दुत्कार देते थे।

नौकर ने सेठ को चोरी हो जाने की सूचना दी तो वह जल्दी ही घर लौट आया। मोती ने उसकी धोती पकड़ी और तालाब पर ले गया। उसने ठीक उसी स्थान पर छलांग लगायी जहां पर चोरों ने धन छिपाया था। सेठ सारी बात समझ गया। उसने अपने नौकरों से सब धन निकलवा लिया।

घर पहुंच कर सेठ ने एक चिट्ठी में चोरी की घटना लिखी और मोती के गले में बांध कर उसे आजाद कर दिया। वह कूद-फांद करता हुआ अपने पुराने मालिक बंजारे के यहां पहुंचा। उसे यों अकेला आते देख लक्खी आग-बबूला हो गया। उसने सोचा, मोती ने सेठ को धोखा दिया दिया है और वहां से भाग आया है। मालिक को देखकर कुत्ता लाड़ से कूईं-कूईं करता हुआ दुम हिलाने लगा। किन्तु बंजारा तो क्रोध में पागल हो रहा था। उसने तलवार से मोती की गर्दन धड़ से अलग कर दी। जैसे ही कुत्ता धरती पर गिरकर तड़पा, लक्खी की निगाह चिट्ठी पर गई। उसने चिट्ठी खोल कर पढ़ी। सेठ ने अपना ऋण भरपाई कर मोती को लौटा देने की बात लिखी थी। अब तो वह अपनी मूर्खता पर बहुत पछताया। उसने अपने दुलारे मोती की पक्की समाधि बनवायी और उस पर लिखवाया—'बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।'

गोपाल

किसी गांव में एक बूढ़ी ब्राह्मणी रहती थी। उसके लड़के का नाम महिपाल था। महिपाल बहुत अच्छा लड़का था। वह मां को कभी परेशान न करता था। घर के कामों में उसका हाथ बंटाता था। जब वह छः वर्ष का हुआ तो मां ने उसे पढ़ने के लिए निकट के गांव की पाठशाला में भेज दिया, क्योंकि उनके गांव मे पाठशाला न थी। महिपाल अपनी पुस्तक और खाने के लिए रोटी लेकर प्रातःकाल अपनी पाठशाला चला जाता।

दोनों गांवों के बीच में एक बड़ा जंगल था। महिपाल उस जंगल में होकर जाता तो उसे बहुत डर लगता। जंगली जानवरों को देखकर पसीने छूटने लगते। उसको लगता, मानो कोई जानवर उसे दबोचने को पीछा कर रहा है। उसने अपने मन के भय की बात मां को बतायी और अनुरोध किया कि वह उसे पाठशाला छोड आया करे। भला वह उसे रोज पाठशाला कैसे पहुंचाने जा सकती थी? उसने महिपाल का साहस बढ़ाते हुए कहा, "बेटे, तुम डर लगने पर अपने बड़े भाई गोपाल को बुला लिया करो। वह वहीं गायें चराता है।"

महिपाल प्रसन्न होकर पाठशाला को चल दिया। रास्ते में जंगल आया। उसे डर लगा तो आवाज लगायी, "भाई गोपाल, आओ और मुझे पाठशाला छोड़ आओ।"

और तभी एक नटखट लड़का झाड़ियों के पीछे से आकर उसके साथ हो लिया। उसके सिर के बालों में मोर का पंख लगा था। उसके हाथ में एक अल्गोजा (बांसुरी) थी। महिपाल उसे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अल्गोजा बजाने का अनुरोध किया। जब वह अल्गोजा बजाने लगा तो सारा जंगल गूंज उठा। जंगल के पशु-पक्षी मुग्ध हो उठे।

वे चलते-चलते गांव के समीप आ गये थे। गोपाल बोला, "भइया महिपाल, अब तो तुम्हें डर नहीं लगेगा। अब तुम जाओ, मैं अपनी गायों को चराने जाता हूं।"

"संध्या को मिलोगे न? संध्या को भी तो मुझे भय लगता है।" महिपाल ने पूछा।

"बुलाओगे तो अवश्य मिलूंगा।" गोपाल ने उसको धैर्य बंधाया।

उसे गोपाल नित्य पाठशाला पहुंचाने लगा। मां ने पूछा कि अब उसे डर तो नहीं लगता। उसने गोपाल भइया के मिलने की सारी बात बता दी। मां ने सोचा, कोई चरवाहा उसे बच्चा समझ कर स्कूल छोड़ आता होगा। वह निश्चिन्त हो गयी।

एक दिन संध्या को महिपाल मां से आकर बोला, "मां, गुरुजी ने डिप्टी साहब के लिए सब बच्चों से दूध मंगाया है।"

मां को बड़ी चिन्ता हुई। उनके घर में दूध देने वाला कोई पशु न था। पडोसी भी निर्धन थे। उनके यहां भी गाय-भैंस नहीं थी। दूध कहां से आएगा? सुबह को बालक दूध न ले गया तो अपने साथियों में लज्जा का अनुभव करेगा। वह बहुत रात तक सोचती रही। सुबह को महिपाल ने दूध की जिद्द की तो मां को गोपाल चरवाहे की बात याद आ गयी। उसने बालक को फुसलाया—"तुम अपने गोपाल भइया से दूध देने को कहना। उसके पास बहुत-सी गायें हैं। वह तुझे अवश्य दूध दे देगा।"

महिपाल की समझ में बात आ गई। उसने जंगल में जाकर पुकारा—"भइया गोपाल, आओ, और दूध भी लेते आना। गुरुजी से आज दूध मंगाया है।"

तभी सामने से पेड़ों के नीचे से बालों में मोर पंख लगाये गोपाल आता हुआ दिखायी पड़ा। उसके एक हाथ में अल्गोजा और दूसरे हाथ में दूध का लोटा था। महिपाल ने दौड़कर उसके हाथ से लोटा ले लिया। गोपाल अल्गोजा बजाते हुए उसके साथ-साथ गांव की सीमा तक आया और नित्य की भांति संध्या को मिलने का वचन देकर लौट गया।

पाठशाला में पहुंच कर महिपाल ने गुरुजी से दूध किसी बर्तन में डालने के लिए पूछा। गुरुजी ने रसोई-घर में रखी बाल्टी में दूध डालने को कहा। बाल्टी में अभी थोड़ा-सा दूध इकट्ठा हुआ था। महिपाल दूध बाल्टी में लौटने लगा। वह हैरान रह गया। बाल्टी भर चुकी थी और लोटा दूध से वैसा ही भरा हुआ था। उसने गुरुजी को पुकारा। गुरुजी भी देख कर अचम्भे में रह गये। रसोई के सभी बर्तन भर गये फिर भी लोटा खाली नहीं हुआ। गुरुजी ने महिपाल से पूछा, "तुम दूध कहां से लाये हो?"

गोपाल भइया से। उसने बताया।

गुरुजी ने उससे कहा कि कल तुम अपने भाई को लेकर आओ। संध्या को घर लौटते समय उसने गोपाल से कहा, ''भइया, तुम्हें गुरुजी ने बुलाया है।'' गोपाल उसकी बात सुन कर चुप हो गया।

अगले दिन महिपाल ठीक समय पर जंगल में पहुंचा और गोपाल को पुकारा। जब वह नित्य की भांति आता हुआ दिखायी न पड़ा तो उसने जोर से आवाज लगाई—''भइया आ जाओ न। पाठशाला जाने को देर हो रही है।'' गोपाल फिर भी नहीं आया। बस, अब तो महिपाल वहीं धूल में लेट कर रोने लगा।

आखिर उसे पेड़ों के पीछे से गोपाल की आवाज सुनायी पड़ी, ''भइया, अब मैं कभी नहीं आऊंगा। गुरुजी ने मुझे जान लिया है, मैं तेरे जैसे सरल-हृदय बच्चों का भइया हूं। बड़े लोगों को मुझे पाने के लिए तुम बच्चों जैसा निर्मल हृदय बनना पड़ेगा तभी वे मेरे दर्शन कर सकते हैं। और हां, तुम डरना नहीं, मैं यहीं जंगल में रहता हूं। तुम्हें कोई जानवर नहीं सतायेगा।''

महिपाल ने पाठशाला जाकर गुरुजी को सारी बात बता दी।

गीदड़ और ऊंटस

एक जंगल में मक्कार नाम का एक गीदड़ रहता था। वह बड़ा चालबाज था। उसकी मित्रता सुबन्धु नाम के ऊंट से थी। सुबन्धु बहुत सीधा और मेहनती था। वे साथ-साथ रहते और भोजन भी एक साथ करने जाते।

नदी के पार किसानों ने भुट्टे बो रखे थे। भुट्टे के खेतों में बहुधा किसान फूट भी बो देते हैं। जब सुबह की ठंडी-ठंडी हवा खेतों पर से होकर आती तो मक्कार का मन फूटों की सोंधी-सोंधी महक से ललचा उठता। नदी बीच में होने के कारण वह फूट और भुट्टे खाने नहीं जा सकता था। उसे तैरना नहीं आता था। कई दिनों तक वह नदी पार करने की तिकड़म सोचता रहा। आखिर उसे एक उपाय सूझा, क्यों न सुबन्धु से इस कार्य में सहायता ले ली जाये। उसने ऊंट के पास जाकर कहा, ''भाई सुबन्धु, देखो सामने के खेतों में कैसा हरा-हरा चारा है।''

''हां है तो भाई।'' सुबन्धु ने कहा।

''और दूधिया भुट्टे भी लगे हैं। पेड़ों की पत्तियों में वह मिठास कहां, जो इन भुट्टों में है।'' ऊंट को अपने जाल में फांसते हुए वह बोला।

''अच्छा, भुट्टे मीठे होते हैं?'' ऊंट के मुंह में पानी भर आया।

''अरे मित्र, एक बार खाओ तो फिर रोज खाने जाया करोगे। बड़े मजेदार होते हैं भुट्टे।''

बस अब क्या था, आधी रात को दोनों मित्र उठे। ऊंट ने गीदड़ को पीठ पर सवार किया और नदी पार कर ली।

किसान इस समय पड़ा सो रहा था। दोनों ने खूब पेट भर कर भुट्टे और फूट खाये। सुबन्धु ने इतना मीठा चारा कभी नहीं खाया था। उसने मक्कार की बड़ी प्रशंसा की।

लौट कर वे खूब सोये, दिन भर आराम से बीता; और रात को फिर खेत मे जा पहुंचे। गीदड़ खाता कम था, खराब ज्यादा करता था। वह सारे खेत के भुट्टों का आनन्द ले लेना चाहता था। ऊंट भी जल्दी-जल्दी खा रहा था। उसका पेट बहुत बड़ा था, इसलिए अभी वह आधा भी न खा पाया था कि गीदड़ भुट्टे और फूट खाकर निबट गया। उसने कहा, ''भाई सुबन्धु, मैं अब और नहीं खा

सकूंगा। जब तक तुम खाकर निबटो, मैं थोड़ा-सा आराम कर लूं।''

सुबन्धु भुट्टे खाता रहा और मक्कार खेत की मेंढ़ पर लेट गया। आंखों में नींद की खुमारी भर आयी थी। उसने एक-दो झपकियां ली ही थीं कि उसे दूर जंगलों से गीदड़ों की 'हुआं-हुआं' सुनायी पड़ी। मक्कार अपनी बिरादरी की आवाज सुनकर जाग गया। वह ऊंट से बोला, ''सुबन्धु भाई, तुम अभी तक खाकर निबटे नहीं और मुझे 'हुक-हुकी' आ रही है।''

''भइया, अभी मेरा पेट नहीं भरा। थोड़ी देर और चुप रहो।''

''नहीं भइया, मुझसे अब चुप नहीं रहा जाता। बिरादरी वाले बोल रहे हैं।''

''तुम चिल्लाओगे तो किसान जाग जायेगा। बस थोड़ी देर और चुप रहो।'' ऊंट ने खुशामद की। किन्तु मक्कार अपनी मक्कारी से बाज न आया और जोर-जोर से चिल्लाने लगा—''हुआं-हुआं''

किसान जाग गया। उसने लाठी उठायी और गीदड़ को मारने चला। गीदड तो छोटा-सा जानवर था। चुपके से दूसरे खेत में जा छिपा। किन्तु ऊंट अपनी इतनी बड़ी देह को कैसे छिपाता। बस अब तो किसान ने लाठी से उसकी खूब मरम्मत की। बेचारे की एक टांग भी तोड़ दी। उसे मक्कार पर बहुत क्रोध आ रहा था। वह मन-ही-मन उसकी मक्कारी का दंड देने की सोचता हुआ नदी किनारे आ गया। गीदड़ वहां पहले ही पहुंच गया था। ऊंट को लंगड़ाता हुआ देख कर वह बोला, ''क्षमा करना भाई, मैंने तो चुप रहने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु बिरादरी की बोली सुन कर मन नहीं माना। फिर इतना बड़ा पेट भी किस काम का जो जल्दी भरता ही नहीं!''

ऊंट जल-भुन गया। उसने मन-ही-मन कहा, 'अच्छा बच्चू, तुझे भी समझूंगा।' फिर प्यार से बोला—''चलो, जो होना था सो हो गया। बैठो मेरी पीठ पर।''

गीदड़ को पीठ पर बिठा कर वह नदी में उतर गया। नदी के बीच में जाकर ऊंट बोला, ''भाई मक्कार, किसान ने मुझे बहुत मारा है। चोटों में बड़ा दर्द हो रहा है। तनिक मैं 'लुट-लुटी' कर लूं। तब घर चलेंगे।''

''नहीं भाई, ऐसा न करना। मैं डूब जाऊंगा। मुझे पार छोड़ आओ, फिर लेट लेना पानी में।'' गीदड़ ने मिन्नत की। किन्तु ऊंट न माना और धप्प से पानी में लेट गया। गीदड़ पानी के तेज बहाव में बहने लगा। उसे तैरना तो आता ही न था। बस, कुछ देर की डुबकियों में वह बेहोश हो गया। तब ऊंट ने ही उसे बाहर निकाला।

मक्कार कौवा

एक बूढ़ा कौवा था। उसका नाम दुर्बुद्धि था। बहुत बूढ़ा होने के कारण वह ज्यादा दूर उड़ नहीं सकता था और न उसे दूर तक दिखायी ही पड़ता था। भोजन के लिए वह कुछ भी न जुटा पाता था। किसी-किसी दिन बेचारे को भूखा ही सो जाना पड़ता था। अन्त में, उसने एक उपाय सोचा। थोड़ी दूर दूसरे पेड़ पर सोन चिड़िया रहती थी। उसने सोन चिड़िया को अपनी बहन बना लिया। बेचारी चिड़िया दिन-भर मेहनत करके भोजन के लिए जो जुटा पाती, उसमें से थोड़ा भाग दुर्बुद्धि को भी दे देती। लेकिन रूखा-सूखा भोजन करने से दुर्बुद्धि को जल्दी ही अरुचि हो गयी। चिड़ियों के नर्म-नर्म बच्चों को देख कर उसके मुंह मे पानी भर आया। वह सोचता, किसी उपाय से चिड़ियों के बच्चे खाने चाहिए। एक दिन वह सोन चिड़िया से बोला, ''दीदी, दिन भर बैठे-बैठे मन नहीं लगता, क्यों न हम सब मिल कर खेती कर लें? फिर तुम्हें भोजन के लिए कहीं जाना नही पड़ेगा।''

सोन चिड़िया उसकी बातों में आ गयी। उसने अपनी पड़ोसिन चिड़ियों से सलाह की। वे सब सहमत हो गयीं। खेत देखने का काम कौवे को सौंपा गया। कौवा बहुत दूर पर एक खेत देख आया।

कुछ दिनों बाद बरसात आरम्भ हो गयी। जमीन गीली हो गयी। खेत जोतने के लिए चिड़ियों ने कौवे को बुलाया। कौआ बोला, ''तुम लोग खेत पर चलो। मैं धीरे-धीरे आता हूं। बूढ़ा होने के कारण मैं तुम लोगों के साथ उड़ नहीं सकता।''

चिड़िया फुर्र से उड़ कर खेत पर चली गयीं। कौआ अवसर की तलाश मे था ही। बस, चिड़ियों के जाते ही वह उनके पेड़ पर पहुंच गया। उसने खूब पेट-भर कर चिड़ियों के नन्हे-नन्हे बच्चे खाये। फिर प्रसन्न होकर वह खेत पर पहुच गया। दिन भर खेत जोतने के बाद संध्या को चिड़ियां घर लौटीं। एक चिड़िया ने देखा कि उसके घोंसले में नन्हे-मुन्नों की हड्डियां पड़ी हैं। बेचारी

चिड़िया खूब रोयी। सब चिड़ियों ने उसका दुख-दर्द सुना, और बड़ी दुखी हुई। सोन चिड़ियां अपने कौवे भइया के पास पहुंची। जब उसने कौवे को अपनी पडोसिन के बच्चों के खाये जाने की बात बतायी तो कौवे ने बनावटी शोक प्रकट करते हुए कहा, "जरूर यहां कोई दुष्ट जानवर होगा। हम लोगों को खबरदार रहना चाहिए।"

अगले दिन वे सब इकट्ठी होकर खेत में बोआई करने गयी। कौवा फिर बहाना बनाकर पीछे रह गया। दूसरी चिड़िया के बच्चे खाकर वह खुश होता हुआ खेत पर पहुंच गया। संध्या को बोआई कर चिड़ियां घर लौटीं तो दूसरी के बच्चों की हड्डियां मिलीं। अब तो उन्हें कौवे की बातों पर विश्वास हो गया और उन्होंने मिलकर कौवे को पहरेदार बना दिया। कौवा बड़ा प्रसन्न हुआ। चिडियां खेत पर जातीं तो वह मजे से उनके अण्डे-बच्चे खाता और थोड़ी दूर पर एक पेड के नीचे उनकी हड्डियां, खोल पंख डाल आता। फिर झूठमूठ का बहाना बना देता कि बूढ़ा होने के कारण उसे कम दिखायी देता है। अवश्य ही कोई उल्लू उनके बच्चे चुरा ले जाता है।

चिड़ियां उसके झूठ बोलने पर विश्वास कर लेतीं और दुखी होकर चुप बैठ जातीं। धीरे-धीरे सारे बच्चे समाप्त होने लगे। चोर का पता लगाने का कोई उपाय चिड़ियों को न सूझता था। एक दिन उन सबने मिल कर पंचायत की। एक सयानी बोली, "मेरी अच्छी बहनो, यदि चोर का पता न लगा तो एक दिन हम सब समाप्त हो जायेंगे। इसलिए मैं सबको सलाह देती हूं कि सब मिलकर जगल में चोर की खोज करें।"

सब चिड़ियों ने उसकी बात मान ली। वे चोर को ढूंढ़ने चल पड़ीं। अन्त में वे उस पेड़ के नीचे पहुंचीं जहां पंख और अण्डों के खोल पड़े थे। उस पेड पर दुर्जन नाम का उल्लू रहता था। चिड़ियों को उस पर बहुत क्रोध आया और ची-चीं करके उसकी कोटर को घेर लिया। दुर्जन उस समय सो रहा था। चिड़ियों की चीं-चीं सुनकर उसकी आंख खुल गयी। वह शोर सुनकर बाहर निकल आया। गुस्से से भरी चिड़ियों ने उस पर हमला कर दिया। वह झट से अपनी कोटर में घुस गया और अन्दर से बोला, "अरी चिड़ियो, तुम मुझे क्यों मारती हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

"तूने हमारे अण्डे-बच्चे खाये हैं। हम तुझे जान से मार डालेंगी।" सब चिड़ियां गुस्से में बोलीं।

उल्लू को बात समझ में आ गयी। वह कौवे की शैतानी को रोज देखा

मोर क्यों रोता है?

बहुत दिनों की बात है, एक घने जंगल में प्रीति और नीति नाम की मोरनी और गुर्सल रहा करती थीं। उन दोनों में बहुत प्यार था। वे आपस में सहेली बन गयी थीं। उन्होंने एक साथ बच्चों को अण्डों से निकाला। प्रीति ने अपने बच्चे का नाम मंगल रखा और नीति ने अपनी बच्ची का नाम चंचल रखा।

थोड़े दिनों में मंगल और चंचल बड़े होने लगे। उनके नन्हे-नन्हे पंख निकल आये। मंगल के नीले रंग के पंख बड़े सुन्दर थे। उन पर गोल-गोल चांद बने हुए थे। उसके सिर पर बादशाहों जैसी कलंगी भी निकल आयी थी। जब वह ठुमकता हुआ चलता तो बड़ा प्यारा लगता। चंचल के भी चिकने-चिकने काले और मटियाले रंग के पंख निकल आये। वह बड़ी फुर्तीली थी। वह अपने छोटे-छोटे डैने फैला कर फुर्र से उड़ जाती। मंगल उसे पकड़ने को पीछे-पीछे उड़ता, लेकिन पकड़ न पाता। मंगल अपने सुन्दर पंखों पर गर्व करता था, पर ज्यादा उड न पाने के कारण उसे दुख भी होता था। सारे दिन दोनों बच्चे खूब खेलते। बारी-बारी मोरनी और गुर्सल बाज, शिकरे और चील से उनकी रक्षा करती।

एक दिन प्रीति उनकी देखभाल कर रही थी। बच्चे चुगते फिर रहे थे। एकाएक एक बाज ने चंचल पर झपट्टा मारा। प्रीति बाज से जूझ गयी। दोनों में घोर संघर्ष हुआ और अन्त में बाज परास्त होकर भाग गया। प्रीति लड़ाई में बहुत घायल हो गयी। नीति उस समय किसी काम से बाहर गयी हुई थी। लौट कर देखा कि उसकी अन्तरंग सहेली लहू-लुहान हुई पड़ी है और दोनों बच्चे सहमे बैठे हैं। नीति ने प्रीति से सारी बातें पूछीं। प्रीति ने अटक-अटक कर बाज से हुई लडाई के बारे में बताया और अन्त में बोली, "बहन नीति, मंगल का ध्यान रखना। मैं अब और न जी सकूंगी।" फिर बातें करते-करते प्रीति के प्राण निकल गये। नीति और बच्चे खूब रोये।

नीति अब मंगल का ध्यान पहले से अधिक रखती। उसे अपने घोंसले में सुलाती। अपने साथ नदी पर स्नान कराने ले जाती और जब तक वह चुगता, उसकी रखवाली करती।

धीरे-धीरे दोनों बच्चे बड़े होने लगे। मंगल कुछ ही दिनों में सुन्दर मोर बन गया और चंचल सलोनी गुर्सल बन गयी। जब आकाश में काले-काले बादल घोर गर्जन करते तो मंगल किलक उठता और अपने मनोहर पंखों को फैला कर खूब नाचता। चंचल उसके निकट बैठ कर उसका नाच देखती।

कितने ही दिनों तक वे सुखमय जीवन बिताते रहे। उनमें कभी मन-मुटाव नही हुआ। एक दिन सुबह को मंगल चंचल को चुगने के लिए बुलाने गया। चचल पेड़ की डाल पर बैठी धूप का आनन्द ले रही थी और उसकी मां अपने घोसले में उदास बैठी थी। मंगल ने पूछा, ''मौसी उदास क्यों हो? क्या जी ठीक नही है?''

नीति बोली, ''भैया मंगल, जी तो ठीक है, किन्तु घर की कुछ ऐसी बात है, जिनसे परेशान हूं।''

''मौसी मुझे बताओ। शायद मैं कुछ सहायता कर सकूं।'' मंगल ने सहानुभूति जतायी।

''चंचल जवान हो गयी है। उसके विवाह की चिन्ता में डूबी हूं।'' नीति ने अपनी उदासी का कारण बताया।

''वाह! यह तो बहुत अच्छी खबर सुनायी। अपनी चंचल का विवाह बड़ी धूमधाम से करेंगे। मैं उसके विवाह में खूब नाचूंगा। बारातियों का शानदार स्वागत किया जायेगा। इस सबका प्रबन्ध मैं करूंगा। आप बिलकुल भी चिन्ता न करें।'' मंगल ने गद्गद कंठ से कहा।

''लेकिन भइया, अपनी चंचल के पैर बहुत भद्दे हैं। उसकी ससुराल वाले बदसूरत पैर देख कर उसे घर से निकाल देंगे। बस इसी चिन्ता में घुली जा रही हू।'' नीति ने चिंतित मुद्रा में कहा।

मंगल चंचल की मां की बात सुन कर गहरे सोच में डूब गया। उसका उत्साह ठंडा पड़ गया। सोचने लगा, पैर ख़राब हैं तो चंचल का क्या कसूर है? वह चंचल के लिए क्या कर सकता है? उसकी सहायता कैसे की जाये? उसने नीति से पूछा, ''मौसी जी, चंचल का रंग-रूप तो सलोना है, फिर उसका दूल्हा पैरो के कारण उसे अपने घर में क्यों नहीं रखेगा?''

''हां भाई, नया जमाना आ गया है। आजकल के लड़के बात-बात में मीनमेख निकालते हैं।'' मौसी ने उसे समझाया, ''हमारे जमाने में मां-बाप की पसन्द से विवाह हुआ करते थे, किन्तु अब लड़के स्वयं अपनी दुल्हन पसन्द करते हैं।''

चंचल के अन्धकारमय भविष्य की बात सुन कर मंगल का मन भर

आया। इतने दिनों तक वे साथ खेल कर बड़े हुए हैं और अब उसकी बाल-सखी कुआंरी रह जाएगी। यह बात उसे बहुत बुरी लगी। उसने मौसी से पूछा, "मौसी, ऐसा कोई उपाय सोचो, जो हमारी चंचल के पैर सुन्दर हो जायें।"

नीति बहुत चालाक थी। वह चाहती थी कि किसी प्रकार मंगल अपने सुन्दर पैर चंचल को दे दे। भोलाभाला मंगल उसकी चालाकी न समझ सका। मगल को अपने चंगुल में फंसा देख कर नीति बड़े दुख-भरे स्वर में बोली, "भइया मंगल, यदि तुम कुछ दिनों के लिए अपने पैर चंचल को उधार दे दो तो उसका विवाह हो जायेगा। ससुराल से लौटकर वह तुम्हारे पैर लौटा देगी।"

मंगल उसके जाल में फंस गया। वह चंचल को बहुत प्यार करता था। उसने चंचल को पैर देना स्वीकार कर लिया। चंचल का विवाह बड़ी धूमधाम से रचाया गया। चंचल खुश होती हुई अपनी ससुराल चली गयी।

चंचल को ससुराल गये कई महीने बीत गये। जब वह न लौटी तो मोर ने गुर्सल से पूछा, "मौसी, चंचल ससुराल से कब लौटेगी?"

"भैया, उसकी ससुराल वाले उसे बहुत प्यार करते हैं। वे उसे भेजने को तैयार नहीं। अब शायद वह कभी नहीं आयेगी और फिर अब मैं बूढ़ी हो गयी हू। न जाने कब प्राण निकल जायें। जवान बेटी अपने घर भली। मैं कल तीर्थ यात्रा पर चली जाऊंगी, लौटने का भरोसा नहीं। तुम भी विवाह कर लो, अकेले कब तक रहोगे।" नीति ने थोथी सहानुभूति जतायी।

मंगल नीति की बात सुनकर बड़ा दुखी हुआ। उसे अपने पैरों की चिन्ता हुई। वह अगले दिन चंचल की ससुराल गया। चंचल ने उसकी बड़ी आवभगत की। सारे दिन उससे बातें करती रहीं। अपनी मां के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की। मंगल से विवाह करने का अनुरोध भी किया। अगले दिन मंगल विदा होने लगा तो चंचल से कहा, "चंचल बहन, हमारे पैर लौटा दो। हम भी अब विवाह करेंगे। लड़की वाले हमारे कुरूप पैरों को देख कर शायद रिश्ता न करें।"

"मैं अपने पैर क्यों दूं?" चंचल एकदम बदल गयी। वह क्रोध में तमतमा कर बोली, "मंगल, मैं तुम्हारी तरह मूर्ख नहीं हूं। भला ऐसे सुन्दर पैर लौटा कर ये गन्दे पैर क्यों लूं?"

मंगल अपनी मूर्खता पर बहुत पछताया। वह चंचल के सामने बहुत गिड़गिड़ाया किन्तु चंचल को बिलकुल दया नहीं आयी और उसने अपनी ससुराल वालों से कह कर मोर को घर से निकलवा दिया। मंगल बेचारा रोता-कलपता अपने घर लौट आया। कहते हैं, तब से मोर नाचता हुआ अपने कुरूप पैरों को देख कर रोता है।

भैंस और बीन

बहुत दिनों की बात है। किसी जंगल में सुन्दरी नाम की एक भैंस रहती थी। जगल हरी-हरी घास से भरा-पूरा था। उसके बीच से एक छोटी-सी नदी भी बहती थी। सुन्दरी दिन-भर स्वतंत्रतापूर्वक घास चरती। प्यास लगती तो नदी मे पानी पीती। घंटों पानी में लोट कर जल-विहार का आनन्द लेती। नींद आने लगती तो थोड़ी दूर पर उगे वृक्षों की छाया में जा बैठती। फिर मन्द-मन्द जुगाली करती हुई आराम से पैर फैला कर सो जाती। इस प्रकार निश्चिन्त जीवन बिताने से उसका शरीर खूब मोटा-ताजा हो गया था। उसके काले रंग में निखार आ गया था।

एक दिन वह नींद की खुमारी में मधुर सपने ले रही थी कि कहीं से बीन का मीठा स्वर सुनायी पड़ा। वह कान खड़े कर बीन सुनने लगी। थोड़ी देर में सामने से हँसमुख नाम का गीदड़ बीन बजाता हुआ आता दीख पड़ा। निकट आकर वह बोला, "सुन्दरी मौसी, नमस्ते।"

"जीते रहो बेटा।" कह कर सुन्दरी ने अपनी पूंछ फटकारी और बोली, "हँसमुख भैया, तुम बीन बहुत अच्छी बजाते हो। हमें भी कोई राग सुनाओ।"

बस, गीदड़ अपनी प्रशंसा सुन कर फूला न समाया और लगा राग-रागिनी अलापने। भैंस उसकी बीन पर मुग्ध हो गई। वह कमर पर पूंछ रख कर नाचने लगी। उसका नाच देखने के लिए जंगल के पशु-पक्षी इकट्ठे हो गये। नाच समाप्त होने पर सारे जानवरों ने उसके नाच और गीदड़ की बीन की प्रशंसा की। थोडे समय में सारे जंगल में सुन्दरी और हँसमुख की जोड़ी प्रसिद्ध हो गयी।

सुन्दरी हँसमुख को बहुत प्यार करती थी। नाच-गाना समाप्त होने पर वह उसे भर-पेट दूध पिलाती थी। कुछ ही दिनों में हँसमुख खूब तगड़ा हो गया और बिरादरी वाले उसे अपना नेता मानने लगे। आधी रात को वे 'हुआं-हुआं' का सहगान करते तो हँसमुख का स्वर उनमें प्रधान होता।

एक दिन हँसमुख दूसरे जंगल में बिरादरी की पंचायत मे गया था। पंचायत

बहुत देर तक चली और भैंस को बीन सुनाने का समय हो गया बिरादरी वालो के आग्रह करने पर भी उसने भोजन नहीं किया और दौड़ता हुआ सुन्दरी के पास आ गया। बोला, "मौसी, बीन बाद में सुनाऊंगा, पहले मुझे थोड़ा-सा दूध पिला दो।"

भैंस उस दिन अस्वस्थ थी। रात से उसने कुछ न खाया था। उसके थनो मे दूध नहीं था। उसने अपनी बीमारी बता कर दूध पिलाने में असहमति प्रकट की। गीदड़ को बहुत बुरा लगा। सोचने लगा, भैंस जान-बूझ कर दूध पिलाना नहीं चाहती। क्यों न इसको दण्ड दिया जाये!

गीदड़ षड्यंत्र रचने में व्यस्त हो गया और कई दिन तक भैंस से मिलने नहीं आया। भैंस बेचारी काफी कमजोर हो गयी थी। एक दिन हँसमुख आकर बोली, "मौसी, यहां से थोड़ी दूर पर बरसीन का हरा-हरा खेत है। उसमें चरोगी तो जल्दी ही मोटी हो जाओगी और शरीर में ताकत भी आ जायेगी।"

भैंस उसकी चाल न समझ सकी, स्वीकृति देते हुए उसने कहा, "हँसमुख भैया, मुझे वह खेत दिखा दो। मैं जल्दी स्वस्थ हो जाना चाहती हूं। देखो, मेरी पसलियां निकल आयी हैं। मैं नाच भी नहीं सकती।"

"मौसी, कल सुबह होते ही मैं वहां ले जाऊंगा। तुम वहां खूब बरसीन चरा करना। किसान बेचारा तो कभी खेत देखने आता ही नहीं। और हां, बरसीन के खेत के साथ ही गन्नों का खेत है। उसमें बड़े मीठे गन्ने हैं। मैं वहीं गन्ने खाया करूंगा।"

अगले दिन हँसमुख और सुन्दरी बरसीन के खेत में पहुंच गये। सुन्दरी हरी-हरी बरसीन देख कर बहुत प्रसन्न हुई और जल्दी-जल्दी चरने लगी। हँसमुख मन-ही-मन प्रसन्न था। सोच रहा था, कुछ ही देर में किसान आयेगा और सुन्दरी की खूब पिटाई करेगा।

वह खुश होता हुआ दूसरे खेत में गन्ने खाने चला गया। थोड़ी देर मे किसान अपने खेत देखने आया। वह ईख के खेत की मेंड पर बैठ गया। उसे बीन बजाने का बहुत शौक था। ईख का खेत बीच में होने के कारण उसने बरसीन चरती भैंस न देखी थी। ठंडी हवा चल रही थी। पेड़ों पर चिड़ियां चहचहा रही थीं। उसका मन बीन बजाने को लालायित हो उठा। वह बीन बजाने लगा और जंगल का वातावरण संगीतमय हो उठा। बीन का मधुर लहरा सुन कर सुन्दरी चरना भूल गयी। उसके पैर लहरे पर थिरकने लगे। वह नाचती हुई किसान के निकट जा पहुंची हँसमुख ईख में छिपा उत्सुकता से देख रहा था कि

भैंस की खूब मरम्मत होगी। बड़ा मजा आयगा।

भैंस को देख कर किसान आग-बबूला हो गया। उसने बीन बन्द कर लाठी उठायी। अब तो भैंस को अपनी भूल मालूम हुई और मार के भय से कमर पर पूंछ रख कर भागने लगी। किसान ने उसका पीछा किया। वह हाथ न आयी तो उसने लाठी फेंक कर मारी। लाठी भैंस को न लगी और सनसनाती हुई सीधे ईख की मेंड के साथ दुबक कर तमाशा देखते हुए गीदड़ की टांग में जा लगी। उसकी टांग टूट गयी। इधर, भैंस ने उसी दिन से प्रण कर लिया कि अब वह कभी बीन पर मोहित न होगी।

शत्रु का सत्कार

बहुत दिनों की बात है, उज्जैन नगर में तेजस्वी राजा विजयसिंह राज्य करता था। राजा अत्यन्त दयालु एवं प्रजा-हितैषी था। वह अपनी प्रजा को पुत्रवत् प्यार करता था। उसके राज्य में कोई दीन-दुखी न था। उसकी दण्ड-व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी, इसलिए चोर-डाकू उसके राज्य में न थे। वह रात में वेश बदल कर अपने नगर में घूमा करता था और जनता का दुख दूर किया करता था।

एक दिन रात को वह नगर में घूमने के लिए निकला। उसका मंत्री ज्ञानवंत साथ था। दोनों घूमते-घूमते शहर के दूसरे कोने में पहुंच गये। जब वह एक झोपड़ी के निकट से आगे बढ़े तो उन्हें लगा, झोंपड़ी में कोई स्त्री रो रही है। विजयसिंह ने रुक कर ज्ञानवंत से कहा, ''महामंत्री, क्या हमारे राज्य में लोग दुखी हैं?''

''अन्नदाता, सब प्रकार भली भांति सुखी एवं सम्पन्न हैं। कोई किसी को सता नहीं सकता।'' मंत्री ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया।

''फिर आधी रात के समय यह रोने की आवाज क्यों आ रही है?'' राजा ने मंत्री से प्रश्न किया।

''महाराज, दुनिया में सुख-दुख आदमी के साथ लगे हैं? लगता है, रोने वाली का कोई सगा-सम्बन्धी मर गया है। अन्यथा इस समय रोने का कोई प्रयोजन नहीं है। हम प्रजा के कष्टों के तत्काल दूर कर देते हैं और रोने का अवसर आने नहीं देते।'' ज्ञानवंत ने नम्र स्वर में राजा को बताया।

''कुछ भी हो, हमें रोने का कारण जानना चाहिए। हो सकता है, राज्य के किसी पदाधिकारी ने उसे कष्ट पहुंचाया हो।'' राजा ने मंत्री को आदेश दिया।

''जो आज्ञा महाराज, मैं अभी मालूम करके आता हूं।'' मंत्री ने घर के दरवाजे की ओर बढ़कर कहा।

कुछ देर बाद मंत्री लौट आया। वह बहुत उदास एवं चिन्तित था। राजा ने उत्सुकता से पूछा, ''कहो, रोने वाली कौन है, क्यों रोती है?''

मन्त्री कुछ क्षण तक चुपचाप खडा रहा फिर दुखित स्वर मे बोला ''अन्नदाता, रोने वाली बुढ़िया है। नाम लक्ष्मी बताया है।''

''लक्ष्मी नाम होने पर भी वह रोती है।'' राजा ने विनोद किया।

''वह अपने लिए नहीं रोती श्रीमान्।'' मंत्री ने बताया, ''वह अपने न्यायप्रिय, दयालु एवं पराक्रमी अन्नदाता राजा विजयसिंह के लिए रोती है।''

''हमें क्या हुआ है?'' राजा की हँसी लुप्त हो गयी।

''महाराज, वह कहती है कि आज से एक सप्ताह बाद आपको सांप डस लेगा।'' मंत्री ने गम्भीर स्वर में कहा, ''भला आप जैसे राजा का जीवन सकट में होने पर कौन नहीं रोएगा?

''मगर हमें सांप क्यों डसेगा? हमने उसका क्या बिगाड़ा है?'' राजा ने शका प्रकट की।

''बुढ़िया ने बताया है कि आप कुछ दिनों पहले शिकार खेलने वन में गये थे। वहां सांप-सांपिन का एक जोड़ा क्रीड़ा कर रहा था। आपने उन पर तीर चलाया और सांपिनी मर गयी। सांप बच कर झाड़ी में सरक गया था। अब वह बदला लेने आ रहा है। अगले सप्ताह आज के दिन जब आप महल में सोये होंगे तो सांप आ कर आपको डस लेगा।'' मंत्री ने बुढ़िया से सुनी पूरी कहानी राजा को सुना दी।

राजा गहरे सोच में डूब गया। उसे सांपिन मारने की घटना याद आ गयी। वह बहुत देर तक सोचता रहा और फिर बोला, ''मंत्रीजी, क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है, जो सांप हमें न डसे।''

''आइए, बुढ़िया मां के पास चलें। शायद वह कुछ उपाय सुझा दे।'' मंत्री ने राजा के आगे-आगे चलने का उपक्रम करते हुए कहा।

वे झोंपड़ी में चले गये। मंत्री ने बुढ़िया को राजा का परिचय दिया। बुढ़िया ने राजा की बलइयां लेकर स्वागत किया। राजा ने विनम्र वाणी में कहा, ''लक्ष्मी मां, आपने हमारी मृत्यु के बारे में बता कर बड़ा उपकार किया है। अब बचने का कोई उपाय भी बताओ।''

बुढ़िया बोली, ''बेटे, तुम जैसा अच्छा राजा पाना हमारा सौभाग्य है। तुम्हारे बचने का उपाय भी बताती हूं। पहले बुढ़िया के घर का थोड़ा सा परसाद खाओ।'' और बुढ़िया ने राजा और मंत्री के सामने थोड़ी-सी मिठाई और दूध रख दिया। जब वे खाने लगे तो बुढ़िया ने राजा को उपाय बताया, ''जब सांप तुम्हें डसने आये तो उसका सत्कार करना। उसे दूध पिलाना। सांप को दूध बहुत

पसन्द होता है। वह प्रसन्न हो जाएगा और तुम्हें कुछ नही कहेगा।

एक सप्ताह बाद राजा ने अपना महल खूब सजवाया। महल के सभी मार्गों पर फूल बिछवाये। जिस कमरे में उसका बिस्तर बिछा दिया गया था, उसमें इत्र छिडकवाया। धूप जलयी गयी। अगरबत्ती का धुआं किया गया। पलंग के चारों ओर दूध के कटोरे भर कर रखवाये गये। राजा सज-संवर कर बिस्तर पर लेट गया। उसकी आंखें दरवाजे की ओर लगी थीं। वह सांप के आने की प्रतीक्षा कर रहा था।

आधी रात होने पर राजा ने एक काला नाग कमरे की खिड़की से लटका देखा। राजा उसके स्वागत में बिस्तर पर बैठ गया। फर्श पर उतर कर सांप ने फुंकार लगायी और राजा को डसने के लिए पलंग को ओर बढ़ा। पलंग के निकट पहुंच कर वह रुक गया। उसके सामने दूध का कटोरा रखा था। फिर वह पलंग के चारों ओर चक्कर काटने लगा पलंग के चारों ओर दूध रखा देख कर उसका सारा क्रोध दूर हो गया। उसने सोचा, 'राजा एक अच्छा आदमी है, जो शत्रु का इतना सम्मान करता है। अतः ऐसे व्यक्ति को नहीं डसना चाहिए।' उसने प्रसन्न हो कर दूध पिया और राजा को बिना हानि पहुंचाये जंगल की ओर चला गया।

एक ठग और चार चोर

किसी गांव में चतुरसेन नाम का ठग और उसकी पत्नी रहते थे। वह अपने धंधे मे बड़ा चतुर था। बड़े-बड़े बुद्धिमान उसकी ठगी का लोहा मानते थे। एक दिन उसकी पत्नी बोली, "सुनते हो जी, घर में पैसे नहीं रहे। पैसों का जुगाड़ करना चाहिए।"

"वाह पैसे तो मिनटों में आ जाते हैं। तुम कल सवेरे तक मुझे दो थैलियां बना दो। फिर देखो, किस कमाल से मैं लोगों को बेवकूफ बनाता हूं।" चतुरसेन ने पत्नी को आश्वासन दिया।

पत्नी ने दो थैलियां सिल दीं और चतुर सैन ने ठीकरों के रुपये घड़ कर उसमें भर लिये। ऊपर पच्चीस-पच्चीस रुपये असली डाल कर थैलियों का मुंह बन्द कर दिया और शाम तक लौटने को कह कर वह अपने घोड़े पर सवार हो शहर की ओर चल पड़ा।

वह घोड़े पर बड़ी शान से अकड़ कर बैठा था। शहर में पहुंच कर अकड़ और बढ़ गयी। कोई आदमी उसके समीप से गुजरता तो वह लापरवाही दिखाते हुए थैलियों को खनखना देता। कुछ दूर चलने पर उसे एक बुढ़िया भीख मागती मिली। उसने थैली में हाथ डाल कर एक रुपया निकाला और गर्व से सीना फुलाते हुए बुढ़िया की ओर फेंक दिया। सामने की दुकान में चार चोर जलपान कर रहे थे। घोड़े पर रुपयों से भरी बड़ी-बड़ी थैलियां लटकी देख कर उनमें से एक बोला, "मुर्गा है, फंसाओ।"

"आदमी चालाक जान पड़ता है।" दूसरे ने अपनी परख बतायी।

"कुछ भी हो। बहुत रुपया है। किसी-न-किसी भांति उड़ाना ही होगा।" तीसरे ने साहस बढ़ाया।

"सारी उम्र चोरी करते हो गयी। बड़ी-बड़ी चोरियां चुटकी बजाते कर डाली। फिर वह तो अकेला है। चलो, पीछा करो।" चौथे ने आदेश दिया।

चारों चोर चतुरसेन के पीछे चल पड़े। चतुरसेन ने जान-बूझ कर थैलियां

जोरों से खनका दीं। चोर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे। कुछ ही देर में रुपया उनका हो जायेगा। चतुरसेन सारे दिन बाजारों की सैर करता रहा। चोर उसका पीछा करते रहे। पर रुपया उड़ाने का दांव कहीं न लगा। चतुरसेन चोरों की उत्सुकता बढ़ाने के लिए, जहां भी किसी भी भिखमंगे को देखता, एक रुपया उछाल कर फेंक देता। चोर सोचते, अवश्य ही वह कोई बहुत बड़ा रईस है। दिन ढलने लगा तो चतुरसेन नगर से अपने गांव की ओर चला। अब तो चोर धैर्य खो बैठे। जिस रुपये को अपना समझ रहे थे, वह उनके हाथों से सहज ही दूर हो रहा था। वे हाथ मल-मल कर पछता रहे थे।

शहर से थोड़ी दूर चलने पर घना जंगल आ गया। चोरों ने सोचा, रुपया छीनने का इससे अच्छा स्थान न मिलेगा। वे उसका रास्ता रोक कर खड़े हो गये। चतुरसेन तो आगत खतरे से पहले ही सावधान था। उसने निर्भीकता से कहा, ''रास्ता क्यों रोकते हो, भाई! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?''

''सारा रुपया हमें दे दो। नहीं तो हम तुम्हें जान से मार डालेंगे।'' एक चोर बोला।

''यह बात है, रुपया चाहिए।'' चतुरसेन चतुराई दिखाते हुए बोला, ''मै तुम्हें सारा रुपया दे दूंगा। मेरे पास रुपये की कमी नहीं। इन थैलियों में रुपये कभी समाप्त नहीं होते। बोला, कितना रुपया चाहिए? और उसने थैली खनका कर मुट्ठी भर रुपये निकाल लिये। चोर चमत्कारी थैलियों की बात सुन कर अचम्भे मे रह गये। उनमें से एक बोला, ''एक थैली हमें दे दो हम उसका मूल्य देने को तैयार हैं।''

''हं...हं...हं...'' चतुरसेन हँसा और बोला, ''भला ऐसी चीजों की भी कोई कीमत दे सकता है? तुम्हें रुपया चाहिए। रुपया लो और अपना रास्ता देखो।''

चोर अपनी बात पर दृढ़ हो गये। सब मिल कर एक स्वर में बोले, ''हम थैली का मूल्य देंगे। बताओ क्या लेना है?''

''अच्छा भाई नहीं मानते तो मैं थैली तुम्हें देता हूं। एक थैली का दाम पांच सौ रुपया होगा। और हां, थैली में झांक कर न देखना और न सारा रुपया एक साथ निकालना। आवश्यकतानुसार रुपया निकालते रहना। घर जा कर गोबर से जमीन लीपना और उस स्थान पर थैली रख कर पूजा करना। तभी इसमें रुपये बढ़ते रहेंगे अन्यथा सब ठींकरे हो जायेंगे।'' चतुरसेन ने उन्हें थैली की विशेषता समझायी। चोरों ने पांच सौ रुपये दे कर एक थैली खरीद ली और प्रसन्न होते

हुए घर लौट गये अब उन्हें रोज राज चोरी करने की न रहेगा घर पहुंच कर उन्होंने गोबर से जमीन लीप कर थैली रख दी। चोर पूजा करने के लिए हाथ-पैर धोने कुएं पर चले गये। तभी एक चोर की पत्नी वहां आ पहुंची और उसने थैली में भरे रुपयों को उलट दिया। ठींकरों का ढेर लग गया। केवल दस-पन्द्रह रुपये निकले। वह समझ गयी कि किसी ने उन्हें ठग लिया है। चोर हाथ-पैर धो कर लौटे तो घर में ठींकरे देख कर हैरान रह गये। धीरे-धीरे आपस मे चर्चा होने लगी और वे अपनी मूर्खता पर बड़े शर्मिंदा हुए। उन्होंने चतुरसेन को ठगी का दण्ड देने का निर्णय किया।

चतुरसेन ने घर पहुंच कर पत्नी को पांच सौ रुपये दिये तो वह बहुत प्रसन्न हुई। चतुरसेन बोला, "देखो जी, यह रुपया मैंने बहुत चालाक चोरों से ठगा है। वे बदला अवश्य लेंगे। घबराना नहीं। मेरा भी नाम चतुरसेन ठग है। वह मजा चखाऊंगा कि सारी उम्र याद रहेगा, किसी उस्ताद से पाला पड़ा है। देखो, बकरी के लिए जो झाड़ी मैं जंगल से काट कर लाया था। उसकी टहनियों पर तुम चीनी की पपड़ी पका कर चिपका दो। मैं कुछ खाने के लिए मंगाऊंगा तो तुम मना कर देना। शेष सब ठीक हो जायेगा।"

अगले दिन चतुरसेन बाहर चबूतरे पर चारपाई बिछा कर बैठ गया। दिन चढे तक उसे चोर आते दिखायी न पड़े। वह प्रतीक्षा करते-करते थक गया। एकाएक उसे सामने से चोर आते हुए दिखायी दिये। चोर जले-भुने तो थे ही चतुरसेन को देखते ही चिल्लाये, "पकड़ो-पकड़ो, वह बैठा है।"

चतुरसेन बिलकुल नहीं घबराया। चोरों के पास आने पर उसने स्वागत किया, "आओ भाई, सुबह-सुबह कहां चले?"

"तुझे अभी सुबह दिखायी पड़ती है। हम अपने रुपये वापस लेने आये हैं।" चोरों ने क्रोध में कहा।

"कैसे रुपये?" चतुरसेन ने आश्चर्य व्यक्त किया और बोला, "गर्मी में चल कर आये हो। थोड़ा कलेवा कर आराम कर लो और बातें बाद में करेंगे।"

"सुनती हो जी, मेहमान आये हैं। थोड़ा ठंडा जल और मीठा तो दो।" चतुरसेन ने ऊंची आवाज में पत्नी से कहा।

"घर में तो कुछ भी नहीं। मीठा कहां से लाऊं।" पत्नी ने उसकी चालाकी का उत्तर दिया।

"तुम पानी दे जाओ। मीठे का प्रबन्ध मैं किये देता हूं।" कह कर चतुसेन उठा और कोने में रखी झाड़ी के नीचे कपड़ा बिछा दिया। फिर डंडा लेकर ढेर

सारी चीनी की पपड़ियां झाड़ लाया।

चोर पपड़ियां खाते जाते थे और झाड़ी से पपड़ी झड़ने की अद्‌भुत घटना पर सोचते जाते थे। चतुरसेन उनके लिए हुक्का लेने अन्दर गया तो चोरों ने पहले रुपये न मांगने का निर्णय किया। चतुरसेन हुक्का लेकर लौटा तो उन्होंने झाड़ी से मिठाई झड़ने के चमत्कार के विषय में पूछा। चतुरसेन ने बड़े गर्व से कहा कि यह झाड़ी उसे हिमालय के जंगल में मिली थी। पन्द्रह दिन में एक बार उस पर मीठी पपड़ियां जम जाती हैं। चोरों ने उससे झाड़ी बेचने का आग्रह किया। पहले तो चतुरसेन झाड़ी बेचने को तैयार न हुआ, फिर उसने अढ़ाई सौ रुपये में झाड़ी उन्हें बेच दी। चोर प्रसन्न होते हुए झाड़ी ले कर घर लौट गये।

चोरों के लौट जाने पर वह पत्नी से बोला, "पन्द्रह दिन तक वे नहीं आयेंगे। तब तक खूब मौज उड़ाओ।"

इस बीच वह जंगल से दो खरगोश पकड़ लाया और पत्नी को समझाया, "कल पन्द्रहवां दिन है। झाड़ी पर मिठाई लगेगी नहीं, और वे लोग अवश्य अपने रुपये मांगने आयेंगे। मैं कल जंगल में एक खरगोश लेकर जाऊंगा, दूसरा घर पर बंधा रहेगा। तुम कढ़ी-चावल बना देना, समझीं।"

चोरों ने पन्द्रह दिन तक झाड़ी पर पपड़ी लगने की प्रतीक्षा की। पन्द्रहवे दिन कपड़ा बिछा कर झाड़ी को डंडे से झाड़ा तो कपड़ा सूखी पत्तियों से भर गया। अब तो चोर आग-बबूला हो गये और चतुरसेन को उसकी करतूत का मजा चखाने चले।

चतुरसेन रास्ते के किनारे अपने खेत में काम कर रहा था। चोरों को देख कर बोला, "आओ भाई, कैसे कष्ट किया इधर आने का?"

अब हम चाल में फंसने वाले नहीं। सीधे-सीधे हमारा रुपया लौटा दो, वरना हम जबरदस्ती वसूल करना जानते है।" चोर गुस्से में फट पड़े।

"यह बात है। चलो, घर पर रुपया लौटा दिया जायेगा।" चतुरसेन ने विनम्र स्वर में कहा और चोर उसके साथ हो लिये। थोड़ी दूर चल कर चतुरसेन ने खरगोश से कहा, "खरगोश भाई, तुम बहुत तेज दौड़ते हो। घर जा कर चावल-कढ़ी बनाने को कह दो।"

उसने खरगोश के गले से रस्सी खोल दी। खरगोश कुलांचे भरता हुआ जगल में अदृश्य हो गया। वे घर पहुंचे तो चारपाई से खरगोश बंधा हुआ था। चोरों को बैठाते हुए चतुरसेन ने पत्नी से पूछा, "क्यों जी, खरगोश ने हमारा सन्देशा कहा, या नहीं?"

"कढ़ी और चावल बनाने को कहा है, सो मैंने तैयार कर लिये हैं। मेहमानों को भोजन खिला दो।"

चारों चोर कढ़ी-चावल खाते समय सोच रहे थे। यह खरगोश तो बहुत काम का है। इसे खरीदना चाहिए। वे रुपया मांगना बिलकुल भूल गये। खाना खा कर वे चतुरसेन से बोले, "भाई, हमें यह खरगोश दे दो।"

"नहीं भाई, मैं कोई भी चीज तुम्हें देने के लिए तैयार नहीं हूं।" चतुरसेन ने नकली हमदर्दी दिखायी।

"कुछ भी हो, हम खरगोश अवश्य लेंगे। बोलो, कितना रुपया लोगे?" चोरों ने एकसाथ आग्रह किया।

"नहीं मानते तो मैं इसे भी पांच सौ रुपये में दूंगा। लेना हो तो लो। इसको सिखाने में मुझे कई वर्ष परिश्रम करना पड़ा है।" चतुरसेन ने दो टूक बात की।

चोर खरगोश लेकर चले गये। जब वे अपने घर से थोड़ी दूर रहे तो खरगोश से बोले, "जाओ, घर जाकर हमारे आने की सूचना दे दो और खीर पकाने को कह दो।"

उन्होंने खरगोश की रस्सी खोल दी। खरगोश उछलता-कूदता नौ दो ग्यारह हो गया। चोर घर पहुंचे तो वहां न खीर बनी और न खरगोश ही आया था। बस, अब तो उन्होंने चतुरसेन से बदला लेने की ठान ली और उल्टे पैरों लौट चले।

उधर चतुरसेन पहले से उनके हमले विफल करने की तैयारी में लगा था। उसने पत्नी से कहा, "देखो जी, वे आते ही होंगे। तुम घर में लाल रंग घोल कर रख लो। जैसे ही वे आयें, तुम लड़ना शुरू कर देना। मैं तुम्हें डंडा मारूंगा। बस तुम रंग बिखेर देना और मरने का ढोंग रच लेना। फिर मैं तुम्हें जादू की छड़ी से जीवित कर दूंगा। सावधान, यदि चूक हो गयी तो लेने के देने पड़ जायेंगे।"

"चिन्ता न करो जी, मैं बिलकुल गलती नहीं करूंगी।" पत्नी ने पूरी योजना समझ कर उत्तर दिया।

थोड़ी देर में सामने से चोर आते दिखायी पड़े। बस, पति-पत्नी में घोर वाक्युद्ध होने लगा। जैसे ही चोर घर के दरवाजे में घुसे, चतुरसेन बोला, "तुम यों चुप नहीं होगी। मैं तुम्हें मार डालूंगा।" और दौड़ कर एक डंडा पत्नी के सिर पर दे मारा। पत्नी दरवाजे के साथ बैठी थी। डंडा ऊपर दरवाजे में लगा और पत्नी झूठ-मूठ ढेर हो गयी। उसने लाल रंग के बर्तन में हाथ मार कर लुढ़का दिया। खून देख कर चोर घबरा गये और दहलीज के दरवाजे पर खड़े रह गये। मुड़ कर

उदास स्वर में चतुरसेन बोला, ''आओ भाई, बैठो।''

''यह तुमने क्या कर डाला? पुलिस तुम्हें जेल में बन्द कर देगी।'' चोरों ने भयग्रस्त हो कहा।

''तुम बैठो भाई। मैं इसे जिन्दा कर लूंगा। अब तक यह कई बार मर चुकी है। मुझे बहुत गुस्सा आता है। बस, एक महात्मा की कृपा से बचा हुआ हूं। नहीं तो कभी की फांसी हो गयी होती।'' और घर में से वह एक काली छड़ी निकाल लाया। चारों को छड़ी दिखा कर बोला, ''यह छड़ी महात्मा जी ने एक हजार रुपये में दी थी। अब मैं छड़ी को लाश पर घुमाऊंगा और यह जिन्दा हो जायेगी।''

जैसे ही उसने छड़ी लाश पर घुमायी, पत्नी जिन्दा हो गयी। अब तो चोर और चक्कर में फंस गये। उन्होंने बड़ी कठिनता से चतुरसेन को छड़ी बेचने के लिए मनाया।

हजार रुपये में छड़ी लेकर चोर अपने घर लौट आये और सबने अपनी पत्नियों को मार डाला, फिर उन पर छड़ी घुमाते रहे, लेकिन पत्नियां जिन्दा नहीं हुई। अब तो उनके गुस्से का पारावार न रहा। वे रात में ही चतुरसेन से बदला लेने चल पड़े।

चतुरसेन दहलीज में निश्चिंत सोया था। उसकी पत्नी अन्दर दालान में सोयी थी। चतुरसेन ने सोचा था कि वे लोग बदला लेने दिन में आयेंगे। उसने अपनी सुरक्षा का कोई उपाय न किया था। चोर मकान में घुस आये और उन्होंने चतुरसेन का मुंह बांध कर उसे गठरी में बांध लिया। वे गठरी सिर पर रख कर उसे नदी में डालने चल दिये। नदी गांव से बहुत दूर थी। चलते-चलते सुबह का उजाला फैलने लगा। चोरों ने सोचा, नित्य-कर्म से निबट कर आगे चलेंगे। उन्होंने एक पोखर के किनारे गठरी रख दी और दूर खेतों में शौच से निवृत होने चले गये।

पोखर के किनारे एक गड़रिया अपनी भेड़-बकरी और भैंस चराने सुबह-सुबह आ गया था। उसने गठरी देखी। वह गठरी के पास पहुंचा और टटोलने लगा। गठरी खोलते ही उसने चतुरसेन का मुंह बंधा पाया। पहले तो गड़रिया डरा, फिर उसने चतुरसेन का मुंह खोल दिया उसने पूछा, ''भाई तुम्हारी यह दशा किसने और क्यों की?''

''क्या कहूं?'' लम्बी सांस खींच कर चतुरसेन बोला, ''मेरे चार साले हैं। वे मुझे बहुत प्यार करते हैं। उनकी छोटी बहन बड़ी सुन्दर है। बस, वे मेरा

दूसरा विवाह करना चाहते हैं। मैंने मना किया तो मुझे जबरदस्ती गठरी में बांध कर अपने गांव ले जा रहे हैं।''

गड़रिये को उसकी बात पर विश्वास हो गया। उसकी शादी न हुई थी। वह बोला, ''दोस्त मेरा विवाह करा दो न?''

''लो, तुम बंध जाओ इस गठरी में। विवाह का मंडप तैयार है। इन्हें मुहूर्त टल जाने के भय से उसकी शादी तुमसे करनी पड़ेगी।'' चतुरसेन ने युक्ति बतायी। बेचारा भोला-भाला गड़रिया उसकी चाल में आ कर गठरी में बंधने को तैयार हो गया। चतुरसेन ने जल्दी से अपने कपड़े उतार कर उसे अपने कपड़े पहना दिये और स्वयं उसके कपड़े पहन लिये। फिर गड़रिये को अच्छी तरह गठरी में बांध दिया।

चतुरसेन गड़रिये की सब भेड़-बकरियां और भैंसें अपने घर ले गया। उधर गड़रिये को नदी में फेंक कर चोर उसी रास्ते से लौट रहे थे। उन्होंने देखा, चतुरसेन के घर के सामने बहुत सारे पशु बंधे हैं और चतुरसेन बैठा हुक्का गुडगुड़ा रहा है। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। चतुरसेन यहां कहां से आ गया? उसे तो वे नदी में डाल आये थे। निकट जा कर उन्होंने चतुरसेन से पूछा, ''आखिर यह सब क्या चमत्कार है?''

चतुरसेन मुसकरा कर बोला, ''तुमने मुझे थोड़े पानी में ही फेंका। इसलिए नदी का देवता कम प्रसन्न हुआ। वह कह रहा था कि अब तुम्हें केवल इन भेड़-बकरियों पर सन्तोष करना होगा। यदि गहरे पानी में डूबते तो इनके साथ सोने-चांदी के सिक्कों का ढेर भी तुम्हें मिलता। मैं तुम्हारा उपकार मानूंगा। इस बार मुझे गहरे पानी में फेंकना।''

चोर उसकी बात सुन कर दांतों-तले उंगली दबा गये। उन्होंने मिल कर फैसला किया कि गहरे पानी में वे स्वयं गिरेंगे और साथ-साथ गिरेंगे, जिससे किसी एक को माल कम अथवा अधिक न मिल जाए। गठरी बांध कर नदी में डालने का काम चतुरसेन को सौंपा गया। नदी पर पहुंच कर चतुरसेन ने चारों चोरों को नदी में डुबा दिया और फिर उनका धन भी अपने घर ले आया। सच कहा है—'लालच बुरी बला है!'

लालची धोबी

किसी घने जंगल में एक सरोवर था। सरोवर का जल मोती-सा साफ और पीने में मीठा था। जंगल के सारे पशु-पक्षी वहां आ कर पानी पीते थे। आस-पास पेडों की घनी छाया थी। राहगीर भी वहां रुक कर थकान मिटाते थे।

सरोवर से थोड़ी दूर, जंगल से बाहर एक गांव था। गांव में एक धोबी रहता था। गर्मियों में पानी की कमी होने के कारण वह भी सरोवर पर कपडे धोने आ जाता था। सारा दिन कपड़े धोता। शाम को धुले कपड़े गधे पर लाद, लौट जाता।

सरोवर में एक मगर रहता था। कुछ दिन पहले एक हंस भी वहां आ कर रहने लगा था। हंस मानसरोवर से आया था। सारे पक्षी हंस से मानसरोवर के किस्से-कहानी सुनते थे। कभी-कभी मगर भी पानी से बाहर आता। धीरे-धीरे उसे भी हँस की बातों में रस आने लगा। वह पेड़ के नीचे आ जाता। किसी से कुछ न कहता। फिर मगर और हंस में मित्रता हो गयी। एक दिन हंस मगर से बोला, "मित्र, हम दोनों मित्र तो हैं ही, क्यों न इस धोबी से भी मित्रता कर ली जाये? बेचारा अकेला ही कपड़े धोता रहता है।"

मगर उसकी बात सुन कर बहुत हँसा, बोला, "मित्रता बराबर वालो से की जाती है। आदमी से हमारा क्या मेल? वह बहुत चालाक होता है। हम जानवरों को पकड़ कर पिंजरे में बन्द कर देता है, फिर मनमाना काम लेता है। धोबी से दूर ही रहना अच्छा है।"

हंस की समझ में बात आ गयी। लेकिन उसे धोबी का अकेला रहना खलता ही रहा। समय बीतता गया। वह चुगता-चुगता धोबी के पास तक पहुंच जाता। फिर मगर की बात याद कर दूसरे किनारे पर जा बैठता। धोबी कपड़े धोने में इतना व्यस्त रहता कि उसे पता ही न चलता कि हंस कब पास आ जाता है। धोबी के कुछ न कहने पर हंस समझा, यह अच्छा मनुष्य है।

एक दिन हंस बेफिक्री से चुगता हुआ धोबी के बहुत निकट आ गया।

अचानक धोबी की निगाह उधर गयी। उसके दिमाग में आया, क्यों न हंस को पकड़ लिया जाये। उसे देख कर बच्चे बहुत खुश होंगे।

हंस बेखबर था। धोबी चालाकी से आगे बढ़ा। हाथ का कपड़ा हंस के ऊपर फेंका। हंस उसमें उलझ गया। धोबी ने उसे पकड़ लिया। अब तो हंस जोर-जोर से चीखने लगा। उसकी आवाज सुन, गहरे जल से मगर दौड़ा आया। मित्र को विपत्ति में फंसा देख कर वह दुखी हुआ। तभी उसे एक युक्ति याद आयी।

वह सोचने लगा— आदमी स्वभाव से लालची होता है। उसके साथ चाहे कितना उपकार किया जाये, अपने स्वार्थ के आगे सब भूल जाता है। क्यों न धोबी को कोई लालच दे मित्र को छुड़ाया जाये। उसने गहरे पानी में डुबकी लगायी। ऊपर आया तो उसके पास एक बहुत सुन्दर लाल था। वह लाल दिखाते हुए धोबी से बोला, ''यदि तुम मेरे मित्र को छोड़ दो, तो मैं यह लाल तुम्हें दे दूंगा।''

लाल देख कर धोबी के मुंह में पानी भर आया। सोचा— हंस मेरे किस काम आएगा? क्यों न लाल लेकर हंस को छोड़ दूं। तभी उसके मन में लालच का शैतान आ बैठा। वह बोला, ''भइया, मैं तुम्हारे मित्र को छोड़ दूंगा, लेकिन लाल का जोड़ा लूंगा।''

मगर समझ गया कि धोबी लोभ के वशीभूत हो गया है। क्यों न इसे पाठ पढ़ाया जाये? वह बोला, ''ठीक है, मैं दूसरा लाल भी लाता हूं।''

मगर ने फिर गहरे पानी में डुबकी लगायी। वह दूसरा लाल भी ले आया। धोबी दूसरा लाल देख कर खुशी से उछल पड़ा। उसने हंस को हवा में उछालते हुए कहा, ''लो मैंने हंस को आजाद कर दिया। अब ये लाल मुझे दे दो।''

हंस उड़ कर सरोवर के दूसरे किनारे पर जा बैठा। मगर ने कहा, ''मूर्ख अब तुझे एक भी लाल नहीं मिलेगा। मैंने तुझे खाया नहीं, यही क्या कम है! जा, भाग यहां से! फिर मत आना।''

बंटवारा

बहुत दिनों की बात है, माधोपुर में एक किसान रहता था। उसके दो लड़के थे। बडे लड़के का नाम बुद्धिप्रकाश था और छोटे का नाम था माधोराम।

बुद्धिप्रकाश बचपन से ही बड़ा चंचल और चपल था, किन्तु माधोराम बिलकुल सीधा-सादा गऊ जैसा था। बेचारा किसान माधो के सीधेपन को देख कर बड़ा दुखी होता और अपनी पत्नी से कहता, "माधो की मां, तेरा यह लाडला तो बिलकुल मिट्टी का माधो है। भगवान जाने इसकी गुजर कैसे होगी?"

मां भी उसके भविष्य के बारे में सोच कर बहुत दुखी होती और माधो को समझाती, "भइया माधो, दुनिया बड़ी वैसी है। इसमें जीना है तो अक्लमंद बनो।"

लेकिन माधोराम पर कुछ असर न होता और वह अपने में मस्त रहता। उसे मां खाने को दे देती तो खा लेता, वरना बिना खाये ही दिन गुजार देता। कभी साफ कपड़े पहना देती तो पहन लेता, नहीं तो गंदे कपड़े पहने ही घूमता रहता। पढने में भी मंद-बुद्धि था। कक्षा में सबसे फिसड्डी।

मगर बुद्धिप्रकाश का यह हाल था कि 'अपना भी खाऊं, तेरा भी हडप जाऊं और बता क्या देगा।' पढ़ने में वह हमेशा चोटी के लड़कों में रहता। उसको एक काम बताया जाता तो दो करके लाता।

बड़े होने पर दोनों भाइयों की शादी हो गयी। बुद्धिप्रकाश की पत्नी कामनी बिलकुल नाजुक मिजाज और आलसी थी। सजने-संवरने के अलावा उसे और कोई काम नहीं था और माधोराम की पत्नी दामनी ठीक बिजली की तरह चंचल थी, सुघड़ थी। बस यों समझिए, दोनों भाइयों की पत्नियां उनके विपरीत गुणो वाली थीं।

कुछ दिनों बाद किसान और उसकी पत्नी का देहान्त हो गया। अब तो कामनी और दामनी में अनबन रहने लगी। दिन-भर में कई-कई बार दोनों मे झगड़ा हो जाता। अन्त में परेशान हो कर दोनों भाइयों ने अलग-अलग रहने का फैसला किया। घर की सब चीजें बंट गयीं। मगर भैंस के बंटवारे पर बात

गडबड़ हो गयी। भैंस कोइ निर्जीव चीज तो थी नहीं, जो आधी आधी बांट ली जाती। बुद्धिप्रकाश का कहना था कि 'भैंस मैं लूंगा, मैं बड़ा हूं,' और माधोराम का कहना था कि 'भैंस बड़ा भाई ही रखे तो क्या फर्क पड़ता है। कभी-कभी हम भी दूध पी लिया करेंगे।' लेकिन दामनी का कहना था कि हम मांग कर दूध क्यों पियें। भैंस का भी बंटवारा होना चाहिए।

दामनी न मानी तो माधोराम को भी भाई से भैंस के बंटवारे के लिए कहना पड़ा। मगर समस्या वही कि भैंस का आधा-आधा कैसे किया जाये। आखिर बुद्धिप्रकाश ने अक्ल दौड़ायी। और बेचारे माधो को अपने जाल में फंसा लिया। बोला, "माधोराम, भाइयों के बंटवारे में औरतों को दखल नहीं देना चाहिए।"

माधो तो था ही निरा मिट्टी का माधो। उसने बड़े भाई की बात का समर्थन किया और दामनी से बोला, "तुम चुपचाप बैठो जी, यह हमारा भाइयों का बटवारा है। हम जो भी करेंगे, ठीक ही करेंगे।"

बेचारी दामनी हाथ मलती रह गयी। वह जानती थी, बुद्धिप्रकाश माधो को बेवकूफ बनायेगा। और हुआ भी यही, बुद्धिप्रकाश ने माधो का उल्लू गांठा, "तुम छोटे हो, इसलिए भैंस का अगला हिस्सा तुम्हारा हुआ।"

"ठीक है।" माधो ने स्वीकृति में गर्दन हिला दी। "पीछे का हिस्सा मेरा होना चाहिए। बेकार हिस्से का तुम क्या करोगे?"

"ठीक है।" माधो ने उसका फैसला मान लिया और दामनी मन ही-मन कुढती रह गयी।

बस, अब तो बुद्धिप्रकाश खूब मजे से रहने लगा। बेचारा माधो दिन भर भैंस को खूब खिलाता-पिलाता और दोनों समय का दूध बुद्धिप्रकाश दुह लेता। यहा तक कि गोबर के कंडे भी उसकी पत्नी ही बनाती।

दामनी देखती और कलपती। उसे अपने भोंदू पति की अक्ल पर तरस आता और बुद्धिप्रकाश की चालबाजी पर जली-भुनी रहती। सोचती, जेठजी को कैसे सबक पढ़ाया जाये। एकाएक उसे तरकीब सूझी और जैसे ही दूध दुहने का समय हुआ वह अपने पति से बोली, "सुनते हो जी, भैंस का अगला भाग हमारा है।"

"बिलकुल हमारा है।" माधो ने उत्तर दिया।

"हम अपने हिस्से का चाहे जो करें, जेठ जी का उससे कोई सम्बन्ध नही।"

"बिलकुल नहीं।"

"बस तो आज जब वह दूध दुहने लगें तो तुम भैंस के अगले भाग को पीटना शुरू कर देना।"

"इससे क्या होगा?"

"होगा जरूर होगा। तुम तमाशा देखना। बस।" कह कर दामनी हौले से मुसकरायी।

बुद्धिप्रकाश दूध दुहने बैठा तो माधोराम ने भैंस के मुंह और गर्दन को छडी से पीटना शुरू कर दिया। भैंस मार खा कर कूदने-फांदने लगी। बुद्धिप्रकाश झल्ला कर बोला, "यह क्या कर रहे हो? मैं दूध कैसे निकालूंगा?"

"भाई साहब, अगला हिस्सा मेरा है। मैं तो ऐसे ही पीटूंगा। आपको रोकने का कोई अधिकार नहीं।"

दामनी दूर खड़ी हँस रही थी और बुद्धिप्रकाश गुस्से से बबकार रहा था। हो-हल्ला सुन कर मोहल्ले वाले इकट्ठे हो गये। जब मोहल्ले वालों को भैंस के बटवारे का पता चला तो सब लोग खूब हँसे। सरपंच ने आगे बढ़ कर कहा, "बुद्धिप्रकाश, तुम बहुत चालाक बनते थे। खा गये न मात। माधो को भैंस का अगला हिस्सा पीटने का पूरा अधिकार है।"

"लेकिन ऐसे तो दूध नहीं दुहा जा सकता।" बुद्धिप्रकाश ने निराश हो कहा।

"इसकी जिम्मेदारी माधो पर नहीं।" सरपंच ने उत्तर दिया।

बुद्धिप्रकाश उदास हो गया। उसकी चालाकी काम नहीं आ रही थी। वह रुआंसे स्वर में बोला, "सरपंच जी, आप ही कोई हल निकालिए।"

"हल तो बिलकुल सीधा-सच्चा है।" सरपंच ने मुसकराते हुए कहा, "पहला फैसला रद्द कर नया बंटवारा मानना पड़ेगा। बोलो मंजूर है।"

"जी।" बुद्धिप्रकाश ने बुझे हुए मन से स्वीकृति दी। इसके अलावा और कोई चारा भी तो न था। "तो सुनो, दोनों भाई भैंस के खिलाने का खर्च आधा-आधा करेंगे और एक समय का दूध एक दुहेगा और दूसरे समय का दूसरा। एक दिन का गोबर कामनी थापेगी और दूसरे दिन का का दामनी।" सरपंच ने अपना फैसला सुनाया। बेचारे बुद्धिप्रकाश को मन मार कर फैसला मानना पड़ा। तभी अपनी विजय पर हँसती हुई दामनी सामने आ खड़ी हुई और बोली, "सरपंच जी, जेठ जी ने आज तक जो दूध दुहा है उसका हिसाब।"

"बेटी, उसे माफ कर दो। बुद्धिप्रकाश के बच्चे भी तो तुम्हारे ही हैं। समझ लेना, तुम्हारे बच्चों ने दूध पिया है।"

बुद्धिमान कबूतर

बहुत दिनों की बात है, एक गांव में गरीबदास नामक गड़रिया रहता था। उसके लड़के का नाम हरिदास था। हरिदास बहुत शरारत करता था। गांव वाले रोज उसकी शिकायत लेकर गरीबदास के पास आते। शिकायतें सुनते-सुनते गरीबदास बहुत तंग हो गया। अन्त में एक उपाय सूझा, क्यों न हरिदास को भेड़ चराने भेजा जाए। इस प्रकार वह सारा दिन गांव से दूर जंगल में रहा करेगा और गरीबदास स्वयं कोई दूसरा काम भी कर लिया करेगा। इससे शिकायत करने वालों को मौका न मिलेगा और उसके घर की आय भी बढ़ जायेगी।

अगले दिन से हरिदास भेड़ चराने जाने लगा। मगर शैतानियां फिर भी नहीं भूला। वह अपनी झोली में ढेर सारे कंकड़ भर लिया करता और रास्ते में जो चीज उसे दिखायी देती उसी पर निशाना लगा देता। थोड़े ही दिनों में उसका निशाना अचूक हो गया।

एक दिन भेड़ चराता हुआ वह बहुत दूर निकल गया। गर्मी के दिन थे। दोपहर हो गयी। उसने भेड़ों को एक पेड़ के नीचे एकत्रित कर दिया और स्वयं पेड़ की जड़ का तकिया लगा कर विश्राम करने लगा। जैसे ही उसकी निगाह पेड़ पर गयी, एक डाल पर कबूतर बैठा देखा। उसने सोचा, 'क्यों न कबूतर का शिकार कर लिया जाये? शाम को बापू उसकी कितनी प्रशंसा करेंगे।' बस, एक कंकड़ निशाना बांध कर कबूतर पर फेंका। कबूतर मूर्छित होकर नीचे गिर गया। उसने कबूतर को उठा लिया। थोड़ी देर में कबूतर की मूर्छा टूटी तो छुटकारा पाने के लिए उसने पंख फड़फड़ाये। पर कोशिश बेकार गयी। अब वह अपनी मुक्ति का उपाय सोचने लगा। एकाएक वह बोला, "भाई, तुम मेरा क्या करोगे?"

"तुम्हारा मांस पका कर खायेंगे।" हरिदास ने बताया।

कुछ देर सोच कर कबूतर बोला, "पहले तुम मुझे पानी पिलाओ, फिर मैं तुम्हें कुछ काम की बातें बताऊंगा, जो तुम्हारे बहुत काम आयेंगी" कबूतर ने

हरिदास उसे निकट के तालाब पर ले गया और पानी पिलाया पानी पा कर कबूतर बोला दोस्त तुम मुझे पका कर अवश्य खाओ पर मेरी तीन बाते सदा याद रखना

"कौन सी बातें?" हरिदास ने उत्सुक होकर पूछा।

"किसी वस्तु को पा कर हाथ से न जाने देना।"

"बहुत अच्छा, और दूसरी बात?"

"तनिक हाथ ढीला करो तो कहूं, कस कर पकड़ने से मेरी आवाज नहीं निकलती और दम घुटा जा रहा है।"

"लो, अब कहो।" हाथ ढीला करते हुए हरिदास बोला, "अब तो तुम्हारी आवाज निकलेगी।"

कबूतर पकड़ ढीला होते ही फुर्र से उड़ कर पेड़ पर जा बैठा और बोला, "हाथ में आयी चीज चली जाये तो कभी पछताना नहीं चाहिए, समझे।"

"मैं समझा नहीं।" हरिदास ने अज्ञानता प्रकट की।

"सीधी-सी बात है, तू मुझे मारता तो हीरा पाता। मेरे पेट में हीरा है। बिना जान-पहचाने किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिए! मूर्ख लड़के, तूने मेरा विश्वास किया और धोखा खाया। जा, अपनी भेड़ें चरा। बुद्धिमान लोग ही कुछ पाने के अधिकारी होते हैं।" कह कर कबूतर वहां से उड़ गया।

चार मित्र

बहुत पुराने समय की बात है, किसी नगरी में एक राजा राज्य करता था। राजा का पुत्र कर्णसिंह बहुत तेजस्वी, पराक्रमी तथा दयालु था। उसकी मित्रता ब्राह्मण-पुत्र नारायण, गूजर-पुत्र करतारसिंह और बढ़ई के बेटे माधव से थी। चारों मित्र सगे भाइयों की भांति रहते थे। चारों ही एक गुरु से किसी आश्रम में शिक्षा पाते थे। आश्रम के जीवन और गुरु की शिक्षा ने उन्हें छोटे-बड़े में भेदभाव किये बिना रहना सिखाया था।

कुछ दिनों बाद चारों शिष्यों ने शिक्षा में निपुणता प्राप्त कर आश्रम छोड़ दिया और अपने-अपने घर चले आये। घर लौटने पर भी चारों मित्रों में वैसी ही प्रीति बनी रही। कर्णसिंह अपने अन्य मित्रों के यहां मिलने जाता तो उसका स्वागत बड़ी धूमधाम से किया जाता और जब उसके मित्र राजमहल में मिलने आते तो कर्णसिंह उनका हार्दिक स्वागत करता, सिंहासन पर अपने साथ बिठाता।

राजा को यह बात बिलकुल न भाती। राजकुमार का अपने से छोटे लोगों से मिलना-जुलना राजा को पसंद न था। उसने राजकुमार को कई बार समझाया भी—"समानता का व्यवहार केवल समान स्तर वाले लोगों से किया जाता है।" किन्तु राजकुमार ने उनकी सीख पर कोई ध्यान नहीं दिया। राजा ने पुत्र की अवज्ञा को अपना अपमान समझा और कुपित हो कर राजकुमार को राज्य छोड़ देने का आदेश दे दिया। राजकुमार ने पिता की आज्ञा पालन करने में बिलकुल हिचक न की।

राजकुमार ब्राह्मण-पुत्र नारायण के घर गया और घर से निकाले जाने की बात बतायी। नारायण राजा के व्यवहार से बहुत दुखी हुआ और मित्र से बोला, "भाई कर्णसिंह, यदि राजा हम लोगों से तुम्हारा मिलना पसंद नहीं करते तो हम कभी राजमहल में नहीं आयेंगे।"

"नहीं नारायण, यह सम्भव नहीं है। मैं आप लोगों के बिना नहीं रह

सकता म सबको अपना छोटा भाई समझता हू

समझाने-बुझाने पर भी राजकुमार पिता के पास लौटने को तैयार न हुआ तो वे अन्य मित्रों के पास गये, किन्तु सभी ने राजकुमार की मित्रता न छोड़ने का निर्णय किया और वे यात्रा का आवश्यक सामान लेकर उसके साथ ही चल दिये।

कई दिनों तक चारों मित्र निरुद्देश्य यात्रा करते रहे। मार्ग में कई नगर और गांव आये, किन्तु उन्हें कोई पसन्द न आया। और आगे-ही-आगे बढ़ते रहे। एक दिन प्रातःकाल उन्होंने यात्रा आरम्भ की तो राजपथ पर एक आदमी झुक कर कुछ ढूंढ़ता मिला। उन्होंने पूछा, "क्या ढूंढ़ते हो भाई?"

"रात में एक चोरी हो गयी है। मैं चोर के पैर पहचान रहा हूं।" उस आदमी ने बताया।

चारों मित्र उस आदमी की बात सुन कर अचम्भे में रह गये। दिन-भर रास्ता चलता है। हजारों लोग आते-जाते हैं। उन सबके बीच चोरों के पैर ढूंढ निकालना बड़ा विचित्र लगा। गूजर-पुत्र करतारसिंह ने पूछा, "भाई, यदि कोई इस विद्या को सीखना चाहे तो आप सिखा देंगे।"

"क्यों नहीं? यह तो विद्या का प्रसार है। अच्छी विद्या लोगों को सीखनी चाहिए। और हां, सीखने वाले को हम अपने घर रखेंगे। खाना-कपड़ा मुफ्त देंगे।" उस आदमी ने कहा।

चारों मित्रों ने सलाह कर करतारसिंह को विद्या सीखने के लिए छोड दिया और स्वयं आगे बढ़ गये। दो दिन यात्रा करने के बाद वे दूसरे गांव मे पहुचे। उस गांव में अधिकतर बढ़ई रहते थे। राजकुमार बढ़ई-पुत्र माधव से बोला, "भाई, यह गांव तुम्हारी बिरादरी का है। तुम किसी घर से भोजन बनाने की आवश्यक वस्तुएं ले आओ।"

माधव एक घर में सामान लेने चला गया। उसने देखा कि घर के आंगन मे एक वृद्ध बैठा कोई अद्‌भुत चीज बना रहा है। उसने बूढ़े से पूछा, "श्रीमान् जी, यह क्या बना रहे हैं?"

बूढ़ा बोला, "यह उड़ने वाला यान है। जब यह पूरा हो जायेगा तो हवा में उड़ा करेगा।"

माधव की बुद्धि चकरा गयी। सोचने लगा, यान बनाना सीखना चाहिए। वह वृद्ध से बोला, "श्रीमान् जी, मैं यान बनाना सीखना चाहता हूं। क्या आप मुझे सिखा देंगे?"

"बिलकुल सिखाऊंगा, क्योंकि मेरे मरने के बाद वह विद्या समाप्त हो जायेगी। चाहो तो तुम आज से ही सीखने लगो। सिखाने का कोई शुल्क न लूंगा और खाने-कपड़े की व्यवस्था भी मैं ही करूंगा।"

माधव बहुत प्रसन्न हुआ और भोजन बनाने का सामान अपने मित्रों को देते हुए बोला, "देखो भाई, मुझे यहां एक नयी विद्या सीखनी है। जीवित रहा तो फिर मिलूंगा। अब और आगे जाना मेरे लिए सम्भव न होगा।"

कर्णसिंह और नारायण ने उसे विदाई देते हुए कहा, "हम तुम्हारा अहित नही चाहते। तुम सफल हो। हमारी शुभ कामनाएं तुम्हारे साथ हैं।"

भोजन कर कर्णसिंह और नारायण अपनी यात्रा पर आगे बढ़ने लगे। दो दिन बाद फिर वे एक गांव में पहुंचे। दोपहर का समय था। दोनों मित्रों को भूख लगी थी। कर्णसिंह बोला, "देखो मित्र, यह तुम्हारी बिरादरी का गांव जान पड़ता है। जाओ किसी घर से भोजन का प्रबन्ध कर लाओ।"

नारायण मित्र की आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझता था। वह एक घर में भोजन की व्यवस्था करने चला गया। उसने देखा कि घर के आंगन में एक गाय मरी पड़ी है और एक जवान लड़की भोजन बनाने में व्यस्त है। नारायण ने सोचा, अवश्य ही वह किसी शूद्र के घर में आ गया है। ब्राह्मण के घर में शव पड़ा हो तो वह भोजन कदापि न बनायेगा। उसने लड़की से पूछा, "इस घर में कौन रहते हैं?"

"हम रहते हैं।" लड़की ने शरारत की।

नारायण उसके व्यंग्य पर लजा गया। उसने सम्भल कर पूछा, "मेरा मतलब, किस जाति के लोग हैं आप?"

"हम ब्राह्मण हैं। जाति क्यों पूछते हो जी आप? सारा समाज एक ही जाति का है, मानव जाति का।" लड़की ने उसकी मनोभावना समझते हुए कहा।

"मेरा मतलब है कि आपके घर में गाय मरी पड़ी है और आप रसोई बनाने में व्यस्त हैं?" नारायण ने जिज्ञासा प्रकट की।

"अरे, यह मरी नहीं है। पिताजी ने मंत्रों द्वारा इसे मृत्यु नींद में सुला रखा है। अब वे आते ही होंगे। इसे जीवित कर लेंगे।"

यह सुनकर नारायण को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके मन में यह विद्या सीखने की इच्छा हुई। वह उस ब्राह्मण का इन्तजार करने लगा। कुछ समय बाद ब्राह्मण आया। उसने अपने हाथ-पैर धोये। हवन करने लगे। जैसे-जैसे वे मन्त्र पढ़ते जाते। गाय में जीवन के चिह्न प्रकट होते जाते और हवन समाप्त होते-होते

गाय एकदम उठ कर खड़ी हो गया।

उसने ब्राह्मण को प्रणाम किया और पूछा, "क्या आप यह विद्या मुझे भी सिखा सकते हैं?" ब्राह्मण सहर्ष तैयार हो गया। उसने ब्राह्मण-परिवार से अपने मित्र के लिए भोजन-सामग्री ली और राजकुमार को सब वृत्तांत बताया। राजकुमार ने कहा, "ठीक है, तुम यह विद्या सीख लो।" और फिर कभी मिलने का वचन लेकर आगे चल पड़ा।

चलते-चलते राजकुमार ने रात एक घने जंगल में बितायी। उसने एक पेड पर मचान बनाया और उसी पर लेट कर सो गया। रात में आंख खुली तो उसे हलका-हलका प्रकाश दीख पड़ा। थोड़ी देर में प्रकाश की किरणों ऊपर आती दिखायी पड़ीं और चारों ओर अद्भुत आलोक छा गया। वह हैरान रह गया। कुएं से एक बहुत बड़ा अजगर बाहर निकल रहा था। उसने मुंह में मणि दबायी थी। बाहर निकल कर उसने मणि कुएं की जगत पर रख दी और स्वयं बड़ी-बडी घास में ओस चाटने लगा। राजकुमार प्रकाश का रहस्य समझ गया। वह चुपचाप मचान पर लेटा हुआ मणि को अपने अधिकार में लेने का उपाय सोचता रहा।

ओस और छोटे-मोटे कीड़े-मकोड़ों का भोजन कर सांप वापस आ गया। उसने मणि मुंह में दबायी और कुएं में उतर गया। राजकुमार ने सोचा—'अवश्य ही सांप नित्य आहार के लिए आता होगा। यदि इसे मारने का उपाय समझ में आ जाये तो मणि प्राप्त हो सकती है।' वह सांप को मारने की युक्ति सोचते-सोचते सो गया।

रात में जागने के कारण राजकुमार देर तक सोता रहा। आंख खुलने पर उसने देखा कि सूरज काफी देर का निकला है और सारे जंगल में धूप फैली है। वह एक पेड़ पर चढ़ गया और चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। कुछ दूर पर उसे ऊंचे-ऊंचे पक्के मकान दिखायी पड़े। उसने अनुमान लगाया कि अवश्य वहां कोई शहर है। वह पेड़ से उतर कर उसी दिशा में चल दिया।

चलते-चलते जंगल समाप्त हो गया और शहर स्पष्ट दीखने लगा। उसके पैरों की गति बढ़ गयी। कुछ ही देर में वह शहर में पहुंच गया। शहर के लम्बे-चौड़े बाजार उसे बहुत पसन्द आये। वह बाजारों में घूमता हुआ एक लोहार के यहां पहुंचा। लोहार ने परदेशी समझ कर उसका बड़ा सत्कार किया। लोहार के अतिथ्य से सन्तुष्ट होकर वह बोला, "भाई, हमें एक ऐसी कड़ाही बना दो जिसके कुन्दे उल्टी ओर हों। हो सके तो पांच-दस नुकीली कीलें भी लगा देना। हम तुम्हें उचित इनाम देंगे।"

लोहार ने बड़ी तत्परता में उल्टे कुंदों वाला कड़ाहा तैयार कर दी और राजकुमार ने उसे दस अशर्फियां इनाम दीं। वह कड़ाही लेकर बाजार से एक रस्सी खरीद लाया। फिर दिन छिपने से पहले भोजन कर जंगल की ओर चल पड़ा।

सूरज डूबते ही चिड़ियां पेड़ों पर बसेरा करने लगीं। जंगली जानवर शिकार की खोज में निकल पड़े। राजकुमार कुएं के निकट वाले वृक्ष पर चढ़ गया। उसने कुएं के ऊपर फैली टहनियों पर मचान बनाया और सांप के निकलने की प्रतीक्षा करने लगा। धीरे-धीरे रात गहराने लगी। जंगल का सूनापन सांय-सांय करने लगा। चारों ओर निस्तब्धता छायी थी। दूर के पेड़ों पर उल्लू बोल रहा था। कभी-कभी चमगादड़ों की फड़फड़ाहट से पेड़ों की टहनियां कांप उठती थीं।

आधी रात टूटने लगी और कुआं प्रकाश से भर गया। राजकुमार संभल कर बैठ गया। उसने कुंदों में रस्सी बांध कर कड़ाही नीचे लटका दी। सांप फुफकारता हुआ बाहर आया और मणि को कुएं की जगत पर रखकर ओस चाटने लगा। राजकुमार धीरे-धीरे कड़ाही को नीचे खिसकाता रहा। थोड़ी देर में साप दूर होता चला गया और कड़ाही मणि के निकट आती चली गयी। सांप की दूरी का अनुमान लगा कर राजकुमार ने कड़ाही मणि पर एकदम छोड़ दी। सांप फन उठाये वापस आया और कड़ाही पर सिर पटक-पटक कर उसने जान दे दी। साप के मर जाने पर राजकुमार निश्चिंत होकर सो गया।

पौ फटते ही चिड़ियां चहचहाने लगीं और पूर्व दिशा उगते हुए बाल रवि के प्रकाश से सिन्दूरी हो उठी। राजकुमार की नींद खुली। प्रातः की ठंडी-ठंडी बयार से उसका मन प्रफुल्ल हो रहा था। वह पेड़ से उतर कर कड़ाही के पास पहुचा। मरे हुए सांप को उठा कर उसने एक ओर फेंक दिया और कड़ाही के नीचे से मणि निकाल ली। मणि पा कर वह प्रसन्नता के मारे नाच उठा।

मणि हाथ में लिये वह कुएं की जगत पर बैठ गया। उसने कुएं में झांक कर देखा। कुएं में अथाह पानी भरा हुआ था। जैसे ही उसने कुएं में झांका, पानी नीचे को उतरने लगा। राजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ। पानी नीचा होने से कुए में सीढ़िया दिखायी देने लगी थीं। राजकुमार कुएं में घुस गया। जैसे-जैसे वह सीढ़ियां उतरता जाता था, पानी नीचे-ही-नीचे खिसकता जाता। अन्त में राज कुमार को कुएं की जगत में एक दरवाजा दिखायी पड़ा। दरवाजे में बहुत बड़ा ताला लगा था। वह थोड़ी देर तक खड़ा सोचता रहा, फिर उसने मणि से ताले को छुआ दिया तो ताला खुल गया।

दरवाजा खुलने पर राजकुमार अन्दर चला गया। वहां एक बहुत बड़ा शहर बसा हुआ था। चौड़ी-चौड़ी सड़कें और ऊंचे-ऊंचे भवन बने हुए थे, किन्तु सब सुनसान थे। बाजार लगे हुए थे। दुकानें सजी हुई थी मगर उन पर भी कोई आदमी न बेचने वाला था और न खरीदने वाला। राजकुमार अचरज में डूबा चारों ओर देखता हुआ आगे बढ़ता रहा। वह सोच रहा था, यह कैसी माया नगरी है जहां कोई नहीं रहता।

नगर के अन्तिम भाग में उसे हरे-भरे बगीचे दिखायी पड़े। बगीचों में रंग-बिरंगे फव्वारे उछल रहे थे। उसने घास के मखमली बिछौने पर बैठ कर थोड़ी देर आराम किया और आगे बढ़ गया। थोड़ी दूर पर उसे एक सुन्दर महल दिखायी दिया। वह महल के दरवाजे पर पहुंचा। वहां भी कोई द्वारपाल न था। किससे पूछे, यहां कौन रहता है? कोई दिखयी न पड़ा तो वह अन्दर चला गया। महल बहुत सुन्दर ढंग से सजा था। संगमरमर की दीवारों पर बारीकी से चित्रकारी और नक्कासी की गयी थी। पहला आंगन पार कर वह दूसरे आंगन में गया तो भीनी-भीनी सुगन्ध से उसके नथुने भर गये। चारों ओर रात की रानी जैसी गन्ध महक रही थी। उसे लगा, मानो वह स्वर्ग में सैर कर रहा हो। वह घूमता हुआ एक भव्य कमरे के सामने पहुंचा। झांक कर देखा तो उसे अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ। लगा, मानो सपने में वह किसी अप्सरा को देख रहा है। चन्दन के पालने में झूलती हुई एक सुन्दरी कपड़े पर कसीदाकारी कर रही थी और बड़ी तन्मयता से मन्द-मन्द गुनगुना रही थी। उसकी सुडौल देह से महक फूट फूट कर सारे वायुमंडल को महका रही थी। राजकुमार बेसुध खड़ा अपलक उसे निहारता रहा। सुन्दरी की तल्लीनता टूटती न देख कर राजकुमार भीतर चला गया। आहट पा कर सुन्दरी का गुनगुनाना बन्द हो गया। वह एकटक राजकुमार को देखने लगी। अनायास ही वह खिलखिला कर हँसी और दूसरे क्षण ही उसके सुन्दर मुखड़े पर उदासी छा गयी। आंखों से आंसू बह निकले। राजकुमार उसके मनोभाव जानने के लिए साहस कर बोला, "आप क्यों तो हँसी और क्यों रोयी?"

सुन्दरी ने आंसू पोंछते हुए कहा, "आप किसी देश के राजकुमार जान पड़ते हैं। सुन्दर और सुकुमार है। मुझे पहली बार आदमी के दर्शन हुए हैं। इसलिए तो मैं हँसी और कुछ ही देर में मौत ऐसे तेजस्वी पुरुष को खा जाएगी, इस दुख की कल्पना से रो पड़ी हूं।"

"मौत क्यों? मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है?" राजकुमार ने निडरता से

पूछा।

"मेरा पिता नरभक्षी दानव है। वह आपको जीवित नहीं छोड़ेगा।" सुन्दरी ने बताया।

"अब कहां है? वह!" राजकुमार ने पूछा।

"सांप का रूप धारण कर वह ओस चाटने गया है।"

"उसे तो मैंने मार दिया है।" राजकुमार ने सुन्दरी को सारी कहानी सुना दी।

पिता की मृत्यु का समाचार जान कर सुन्दरी उदास हो गयी। राजकुमार सात्वना देते हुए बोला, "आपके पिता की हत्या हमने की है। चाहें तो हमें दंड दे सकती हैं। हम विरोध नहीं करेंगे।"

राजकुमार की विनम्रता पर सुन्दरी मुग्ध हो गयी, बोली, "सभी को अपने मा-बाप की मृत्यु से दुख होता है। मुझे भी दुख है, किन्तु मैं प्रसन्न भी हूं। एक प्रकार से मैं यहां बन्दिनी का जीवन जी रही थी। न यहां कोई बात सुनने वाला है, न सुनाने वाला। यदि कोई भटक कर आ भी जाता था तो वह पिता का आहार बन जाता था। कम-से कम अब स्वतंत्र जीवन तो जी सकूंगी। फिर आप जैसा तेजस्वी पुरुष मित्र होगा तो जीवन और भी सुहावना हो जाएगा।" एक क्षण रुक कर वह अनुनय-भरे स्वर में बोली, "अब आप मुझे अकेली छोड़ कर तो न जाओगे?"

"नहीं हम सदा यहीं रहेंगे।" राजकुमार सुन्दरी पर मुग्ध हो गया था। उसने पूछा, "आपका क्या नाम है?"

"बहुत खूब, अपना नाम बताया नहीं और हमारा नाम पूछते हो जी।" सुन्दरी ने ठिठोली करते हुए उत्तर दिया, "महकदे कहा करते थे पिता जी मुझे।"

"मेरा नाम कर्णसिंह है।" राजकुमार ने अपना नाम बताया।

राजकुमार और महकदे में अन्तरंगता के सूत्र इतने गहरे पैठ गये कि वे एक-दूसरे को देखे बिना एक पल भी न रह सकते थे। महकदे अपने हाथों उबटन मल कर राजकुमार को स्नान कराती। रसोई जिमाती, पंखा झलती। राजकुमार विलासपूर्ण जीवन बिताने में इतना भूला कि उसे अपने मित्रों की याद केवल भोजन करते समय आती। सभी मित्रों ने अलग होते समय प्रण किया था कि जब वे भोजन करने बैठा करेंगे तो शेष तीन का भाग अलग निकाल कर पशु-पक्षियों को खिला दिया करेंगे। राजकुमार इस नियम को बिलकुल न भूला था। महकदे से विवाह कर लेने के बाद भी नहीं।

समय सुख से बीत रहा था। एक दिन महकदे बोली, "सुनते हो जी, यह

सूनापन अच्छा नहीं लगता। चलो, कहीं घूम आयें। बाहर की दुनिया भी देखे।''

राजकुमार ने उसका प्रस्ताव निर्विरोध स्वीकार कर लिया। महकदे ने सोलह सिंगार किया और राजकुमार भी सजधज गया। मणि साथ ले कर वे घूमने को बाहर निकल पड़े। महकदे ने बाहर की दुनिया के पहली बार दर्शन किये थे। दूर-दूर तक बिखरा प्राकृतिक सौंदर्य उसे लुभावना लग रहा था। दिन-भर जगल में घूमते रहे, संध्या समय थक कर वे घर की ओर लौट पड़े। कुए के निकट लौट कर महकदे बोली, ''बहुत थक गयी हूं। थोड़ा विश्राम कर घर चलेंगे।''

राजकुमार भी थक गया था। वे कुएं की जगत पर बैठ कर सुस्ताने लगे। महकदे ने एक पैर जगत के नीचे लटका कर जूती उतार दी थी। उन्हें आराम करते हुए थोड़ा समय हुआ था कि बिलकुल निकट घोड़े की टाप सुनायी पडी। वे घबरा-से गये, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि कोई उनके निवास-स्थान के विषय में जान जाये। जल्दी से वे कुएं में उतर गये और महकदे जूती वही भूल गयी।

घुड़सवार किसी देश का राजकुमार था। वह दिन-भर शिकार करते-करते थक गया था। उसे बहुत प्यास लगी थी। पानी की खोज में वह कुएं पर आया। लोटे से पानी खींच कर पिया और कुएं की जगत पर बैठ कर आराम करने लगा। अनायास उसकी दृष्टि महकदे की जूती पर गयी। राजकुमार ने जूती उठा ली। ऐसी सुन्दर जूती उसने अपने जीवन में कभी न देखी थी। वह सोचने लगा—इस बियाबान जंगल में यह जूती कहां से आयी? जूती वाली कौन हो सकती है? जिसकी जूती इतनी बहुमूल्य और सुन्दर है, वह कितनी रूपवती होगी?

उसने जूती वाली की खोज शुरू कर दी, किन्तु सूर्यास्त होने तक उसे कोई चिह्न दिखायी न पड़ा। निराश होकर वह अपने शहर को लौट गया। अगले दिन उसके मित्र मिलने आये तो राजकुमार को बहुत उदास पाया। उन्होंने उदासी का कारण पूछा तो राजकुमार ने जूती दिखा कर दुःखी होने का कारण बताया। राजकुमार की उदासी हरने के लिए एक मित्र ने सुझाव दिया कि किसी दूती को यह काम सौंपा जाए, क्योंकि स्त्री का भेद स्त्री जल्दी पा लेती है। सब मित्रों ने उसके सुझाव का समर्थन किया।

राजकुमार ने एक कुटनीतिज्ञ दूती को बुलाया और उससे सारी व्यथा कह सुनायी। दूती ने जूती वाली को ढूंढ़ने का काम सहर्ष स्वीकार कर लिया। राजकुमार ने उसे मुंहमांगा पुरस्कार देने का वचन देकर आवश्यक खर्च के लिए दस हजार रुपये अलग से दिये।

दूती ने उस जंगल के विषय में राजकुमार से पूरी जानकारी प्राप्त कर ली थी। जंगल के बीच एक नदी बहती थी। दूती ने नदी द्वारा प्रस्थान करने की योजना बनायी। बहुत-से नौकर-चाकर ले कर उसने नौका नदी में उतरवा दी।

राजकुमार के बताये स्थान पर पहुंच कर दूती ने नौका किनारे से लगवा दी और नौकरों से अपने लौटने तक प्रतीक्षा करने को कहा। दूती ने फटे-पुराने कपड़े पहने और गरीब बुढ़िया का वेश बना कर जंगल की ओर चली।

दूती ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उस कुएं के पास पहुंच गयी। योजनानुसार झाड़ियों के पीछे छिप कर जूती वाली की प्रतीक्षा करने लगी। दिन ढलने पर कर्णसिंह और महकदे घूमने के लिए कुएं से बाहर निकले। दूती मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुई। उनके निकट पहुंच कर उसने पाखंड मचाना शुरू कर दिया। वह जोर-जोर से रोने लगी। उसका रोना सुन कर महकदे के मन में दया आ गयी, बोली, ''देखो जी, इस सुनसान जंगल में कोई दुखियारी रो रही है।''

''कोई रोता है, कोई गाता है। इसी का नाम दुनिया है।'' कर्णसिंह ने उसे समझाया। तब तक दूती रोती हुई उनके निकट आ गयी। महकदे ने पूछा, ''मा, तू क्यों रोती है?''

''बेटा, दुखिया हूं। एक बेटा था, वह भी घर छोड़ गया। नाते-रिश्तेदारों ने घर से निकाल दिया है। बस यों ही भटकती रहती हूं।''

महकदे सहानुभूति से भर गयी। उसने कर्णसिंह से कहा, ''देखो जी, इतने बडे महल में हम अकेले रहते हैं। दो से तीन भले। क्यों न बेचारी को साथ रख लें?''

कर्णसिंह ने अनिच्छा होते हुए भी स्वीकृति दे दी। वे दूती को लेकर कुएं में उतर गये। दूती मन-ही-मन सोच रही थी, जूती वाली यही हो सकती है। ऐसा रूप उसने अपने जीवन में कभी न देखा था। महल में पहुंच कर सबसे पहले दूती ने साथ लायी जूती की जोड़ी की दूसरी जूती को खोजना शुरू किया। ढूंढ़ने में उसे अधिक देर न लगी। महल के एक कोने में पुरानी वस्तुओं का भंडार था। दूती किसी चीज के ढूंढ़ने का बहाना कर उसमें घुस गयी। भंडार में बहुत-सी पुरानी और बेकार चीजें पड़ी थीं। दूती ने उन्हें टटोलना शुरू कर दिया और उसे जोडी की दूसरी जूती यहां पड़ी मिल गयी। उसने जूती को सहेज कर रख दिया।

दूती महकदे और कर्णसिंह की मन लगाकर सेवा करने लगी। उसने कुछ ही दिनों में उनका विश्वास पा लिया। वह परिवार के सदस्य की भांति रहने लगी। एक दिन दोपहर में कर्णसिंह भोजन करके विश्राम कर रहा था। दूती ने निकल भागने का अच्छा अवसर समझा। वह महकदे से बोली, ''बेटी, यहां

अकेले रहते बहुत दिन हो गये हैं। एकांत से मेरा जी बहुत घबराता है। चलो बाहर घूम आयें।''

''मैं अकेली बाहर नहीं जाऊंगी। राजकुमार जाग जायेंगे तो साथ-साथ घूमने चलेंगे,'' महकदे ने उत्तर दिया। किन्तु दूती तो महकदे को उड़ा ले जाना चाहती थी। वह बोली, ''हम जल्दी ही लौट आयेंगे। राजकुमार को क्यों परेशान करें?''

दूती के स्वर में कुछ ऐसी विनम्रता थी कि महकदे उसका आग्रह न टाल सकी और चलने को तैयार हो गयी। बाहर जाने के लिए मणि लेना आवश्यक था। इसलिए दूती ने महकदे से कहकर मणि अपने अधिकार में ले ली। जब वे कुए से बाहर आने लगीं तो दूती ने किसी वस्तु के भूल आने का बहाना बनाया और महकदे को वहीं खड़ी कर स्वयं महल में लौट गयी। वह राजकुमार के कमरे में पहुंची और खूंटी से तलवार उतार कर राजकुमार का बध कर आयी। लौट कर उसने महकदे से नदी के किनारे घूमने का अनुरोध किया। महकदे उसके बहकाये में आ गयी; और वे नदी पर पहुंच गयीं। नदी में नाव दिखा कर दूती बोली, ''आओ बेटी, नाव में बैठ कर नाव की सैर कर आयें।''

नाव में बैठने की इच्छा महकदे के मन में थी, किन्तु कर्णसिंह के जाग जाने की आशंका से वह बोली, ''नहीं मां, वे जाग जायेंगे तो नाराज होंगे। हमें घर लौटना चाहिए।''

''अरी थोड़ी देर लगेगी। कौन हम बहुत दूर जा रहे हैं!'' दूती ने समझाया। महकदे उसकी बातों में आ गयी और नाव में चढ़ गयी। दूती ने नाव की रस्सी खोल दी और नाव को गहरे पानी में पहुंचते ही उसने अपने नौकरों को सांकेतिक भाषा में पुकारा। देखते-ही-देखते दस-बारह आदमियों ने नाव को घेर लिया और नाव वे तेजी से शहर की ओर खींचने लगे। महकदे बहुत चीखी-चिल्लायी पर सब बेकार।

नगर में पहुंच कर दूती ने जूती की जोड़ी राजकुमार के सामने पेश की और बोली, ''राजकुमार, मैं जूती वाली को साथ ले आयी हूं।'' राजकुमार प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा, बोला, ''कहां है वह? जल्दी दर्शन कराओ हमें।''

''पहले हमारा इनाम, बाद में दर्शन।'' दूती कुटिलता से मुसकरायी। राजकुमार ने उसे बहुत-सा धन देकर विदा किया और महकदे राजमहल में पहुचा दी गयी।

राजकुमार के बहुत अनुनय-विनय पर महकदे विवाह के लिए मान गयी। उसने सतीत्व बचाने की एक युक्ति सोच निकाली। उसने राजकुमार से कहा

कि विवाह उसके मायके के रीति-रिवाजों से होगा। राजकुमार ने उसका आग्रह स्वीकार कर लिया। उसने बताया, उसके मायके के नियमानुसार उसे तीन पूर्णिमा तक पति की मंगल कामना के लिए व्रत रखना पड़ेगा और इस बीच वे केवल मित्र की भांति आचरण करेंगे। व्रत के दिन से सदाव्रत खोला जायेगा, जिसमें एक बार में केवल एक मनुष्य भोजन पाने का अधिकारी होगा।

राजकुमार ने महकदे के बताये नियम को मान लिया और सदाव्रत भी खोल दिया। महकदे ने सदाव्रत के प्रधान को बुला कर आदेश दिया कि एक खुराक से अधिक मांगने वाला जो भी व्यक्ति आये उसे महल में पहुंचा दिया जाये। उसकी अनुमति के बिना उसे भोजन न दिया जाये। प्रधान ने सिर झुका कर आदेश पालन करने का वचन दिया।

उधर तीनों मित्र नारायण, माधव और करतारसिंह अपनी- अपनी विद्याओं में निपुण हो चुके थे। अकेले घर लौटना किसी को पसंद न आया। करतारसिंह ने अपने गुरु से आशीर्वाद लेकर अपने मित्रों की खोज करनी शुरू कर दी और उनके पद-चिह्न पहचानता हुआ माधव के पास पहुंचा। दोनों मित्र गले मिले। माधव ने भी अपने गुरु से घर लौटने की अनुमति ले ली और दोनों मित्र उड़नखटोले पर बैठ कर शेष अन्य मित्रों के पदचिह्नों को खोजते हुए चल पड़े। यान नारायण के यहां उतरा। तीनों मित्र मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। अब केवल राजकुमार को खोजना था। वे पद-चिह्नों की सहायता से उसी जंगल में पहुंच गये। पद-चिह्न कुएं पर आकर समाप्त हो गये।

तीनों मित्र कठिनाई में फंस गये। राजकुमार को अब कहां और कैसे ढूंढा जाये? अन्त में तीनों ने मिल कर एक निर्णय किया कि कुएं का पानी निकाला जाये। राजकुमार के नक्षत्र देख कर नारायण ने अपनी विद्या से अनुमान लगाया कि राजकुमार इसी कुएं में मिल सकता है।

तीनों मित्र कुएं का पानी निकालने की तरकीब सोचने लगे। नारायण को शहर से तीन बाल्टियां और रस्सी तथा भोजन लाने को कहा गया। नारायण चल कर शहर में आ गया। उसने सबसे पहले भोजन की व्यवस्था करने की सोची। उसने मार्ग में जाते एक व्यक्ति से पूछा, ''क्यों भाई, यहां कोई अच्छा-सा ढाबा होगा? चार आदमियों के लिए खाना तैयार कराना है।''

''ढाबे को क्या करोगे भाई, नयी रानी के सदाव्रत से चाहे जितना भोजन लो।'' उस व्यक्ति ने बताया।

नारायण की समझ में बात आ गयी और वह पूछता-पूछता सदाव्रत के स्थान पर पहुंच गया। उसने भंडारची से चार आदमियों का भोजन मांगा। भंडारची

ने उसे प्रधान के पास भेज दिया। प्रधान महकदे के आदेशानुसार उसे विशेष आज्ञा लेने के लिए राजमहल में ले गया। महकदे ने नारायण का आदर-सत्कार कर उसे महल की अतिथिशाला में ठहरा दिया। एकान्त पाकर महकदे नारायण के पास गयी और उसने चार आदमियों के लिए भोजन प्राप्त करने का भेद पूछा। नारायण ने सारी कथा महकदे को सुना दी और बताया कि उनका एक मित्र जगल के कुएं तक आया है। आगे उसका कोई पता नहीं लगता। महकदे ने तत्काल अपनी बुद्धि से अनुमान लगाया, ये वही कर्णसिंह के मित्र हैं, जिनका भाग खाना खाते समय वह निकाला करता था। उसने कर्णसिंह और अपने सबध की कहानी सुनायी और बताया कि कुएं में अथाह जल है। उसे केवल मणि द्वारा हटाया जा सकता है और मणि दूती के पास है। नारायण चिन्तित होकर बोला, "दूती से मणि कैसे प्राप्त की जाये?"

"दूती का लड़का बारह वर्ष हुए घर छोड़ कर चला गया था। उसका लडका बन कर मणि उड़ायी जा सकती है।" महकदे ने युक्ति सुझायी।

नारायण ने जंगल में लौटकर मित्रों को पूरी बात समझायी। करतारसिंह ने मणि उड़ाने का काम अपने लिए चुना। वह साधारण-से कपड़े पहन कर नगर की ओर चला। मार्ग में उसे महकदे के विश्वासपात्र नौकर मिल गये। उनकी सहायता से वह दूती के घर पहुंच गया। दूती ने खोये लड़के को पाने की खुशी में उत्सव मनाया, दान-दक्षिणा बांटी और मन्दिरों में प्रसाद चढ़ाया।

करतार ने दो-तीन दिन बड़े आराम से बिताये। एक दिन आधी रात को वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा। दूती की आंख खुल गयी। बेटे की चीख-पुकार सुन कर वह दौड़ी आयी और प्यार से पूछा, "बेटे, क्या बीमारी है?"

"मां, मेरी आंख में भयंकर पीड़ा हो रही है।" करतारसिंह और जोर-जोर से चिल्लाया।

"ठहर जरा, मैं अभी वैद्यजी को बुलवाती हूं।" दूती ने कहा।

"नहीं मां, मेरी आंखें दवाओं से अच्छी नहीं होंगी। मैं दक्षिण भारत मे जिस राजा के यहां नौकर था, उसके पास एक मणि थी। जब मेरी आंखें दुखती थीं तो दो-चार बार मणि आंखों पर घुमाने से अच्छी हो जाती थीं। मणि के बिना मेरी आंखें अच्छी न होगीं। किसी आदमी को भेज कर वहां से मणि मंगवा दो।"

"अरे, आदमी भेजने की आवश्यकता नहीं। मणि तो घर में ही है। मैं अभी लाती हूं।" कह कर दूती मणि लेने चली गयी।

दूती के लौटने तक करतारसिंह कराहता रहा। दूती अपने संदूक से मणि निकाल लायी। मणि लेकर करतारसिंह ने अपनी आंखों पर छुआयी और कहा,

"मां, अब तुम सो जाओ, सुबह तक मेरी आंखें ठीक हो जायेंगी।"

पीड़ा में कमी देख कर दूती आराम से अपनी चारपाई पर जा सोयी। थोड़ी देर में वह जोर-जोर से खर्राटे भरने लगी। करतारसिंह ने निकल भागने का अच्छा अवसर जाना और वह मणि लेकर चम्पत हो गया।

भोर होते ही तीनों मित्र मणि की सहायता से कुएं में उतर गये। बहुत खोजने पर कर्णसिंह का शयनागार मिला। अन्दर जा कर देखा, पलंग पर कर्णसिंह का शरीर सूखा अस्थिपंजर पड़ा था। तीनों मित्र उसके दुखद अन्त से बहुत दुखी हुए। अब नारायण ने अपनी विद्या का चमत्कार दिखाया। पंजर को चादर से ढक दिया और उसने मंत्रोच्चारण के साथ पानी के छींटे शव पर छिड़कने शुरू कर दिये। कई घंटे के परिश्रम के बाद चादर में कुछ गति हुई। तीनों मित्र प्रसन्नता के मारे उछल पड़े। नारायण और शीघ्रता से मंत्रोच्चारण कर पानी के छींटे मारने लगा। कर्णसिंह जीवित हो गया।

कर्णसिंह के जी उठने पर सारे मित्र गले मिले। उनकी आंखों में हर्ष के आंसू तैर आये। फिर सबने अपनी-अपनी कहानी सुनायी। कर्णसिंह ने महकदे को वहां न पाकर मित्रों से पूछताछ की। नारायण ने महकदे के अपहरण की कथा उसे सुनायी। कर्णसिंह को महकदे के बिछोह का बहुत दुख हुआ। माधव ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, "रात को हम अपने यान में बैठकर नगर में जायेंगे और महकदे को महल से निकाल लायेंगे।"

और चारों मित्र यान में सवार हो नगर में पहुंच गये। वे वहां एक धर्मशाला में ठहरे। जब रात गहराने लगी। तो वे लोग यान पर उड़ कर महकदे के महल में पहुंचे। महकदे वहां पहले से उनके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। यान में बैठ कर महकदे ने कर्णसिंह से बताया कि अपहरणकर्ता राजकुमार की बहन बहुत रूपवती है। उसे नारायण से विवाह करने के लिए उठाया जाये तथा दूती की दो युवा भानजी हैं, उनका विवाह माधव और करतारसिंह से किया जाना चाहिए। दूती के अपराध का यही उचित दंड है। कर्णसिंह ने महकदे के कथनानुसार अपने तीनों मित्रों की भावी वधुओं का अपहरण कर लिया और अन्त में दूती के हाथ यान से बांध दिये। जैसे ही वे आसमान में उड़ने लगे, दूती के हाथ खोल दिये। दूती के पृथ्वी पर गिरने पर उसके प्राण निकल गये।

चारों मित्र पत्नी-सहित अपने नगर में लौट आये। राजा को उनकी विद्या के बारे में पता लगा तो उसने उनका भव्य स्वागत किया। धूमधाम से समारोह मनाये गये और नारायण, माधव और करतारसिंह का विवाह पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ।

मैना और चने का दाना

एक मैना बहुत भूखी थी। वह खाने की तलाश में घर से निकली। ढूंढ़ते-ढूढते उसे एक चने का दाना मिला। दाना पा, वह बहुत खुश हुई। सोचा, दाना पीस कर रोटी बनानी चाहिए। गरम रोटी का जायका बड़ा मजेदार होता है। दाने को ले कर वह चक्की पर पहुंची। चक्की की हत्थी फटी हुई थी। जैसे ही उसने दाना चक्की में डालना चाहा, दाना फिसल कर चक्की की हत्थी में फंस गया। अब तो मैना बहुत परेशान। उसने हत्थी से दाना निकालने के लिए बहुतेरी चोंच मारी, मगर दाना नीचे और नीचे धंसता चला गया। थक कर उसने हत्थी से कहा, ''हत्थी री, मेरा दाना दे। दाना चक्की पिसे। आटे से रोटी बने।''

''आप निकाल ले!'' हत्थी ने उसे चिढ़ाया—''ले, और पीस आटा।''

मैना को उसकी बात पर गुस्सा आया। वह उड़ कर बढ़ई के पास पहुंची और बोली, ''बढ़ई, बढ़ई, हत्थी चीर। हत्थी दाना दे नहीं, दाना चक्की पीसे नही, आटे बिना रोटी बने नहीं। भूखी मैना खाये क्या?''

''मेरा हत्थी ने क्या बिगाड़ा है, जो मैं उसे चीरूं! बढ़ई ने टके-सा उत्तर दिया।

मैना क्रोध में उफनती हुई सांप के पास पहुंची और बोली, ''सांप-साप, तू बढ़ई को डस ले। बढ़ई हत्थी चीरे नहीं, हत्थी दाना दे नहीं, दाना चक्की पीसे नही, आटे बिना रोटी बने नहीं। भूखी मैना खाये क्या?''

''वाह री मैना! मैं बढ़ई को क्यों डसूं? उसने मुझे क्या नुकसान पहुंचाया है, जो मैं उसकी जान लूं।''

मैना आपे से बाहर हो गयी। वह पंख फड़फड़ाती हुई लाठी के पास पहुची और बोली, ''बहन लाठी तू, सांप को मार। सांप बढ़ई को डसे नहीं, बढ़ई हत्थी चीरे नहीं, हत्थी दाना दे नहीं, दाना चक्की पीसे नहीं, आटे बिना रोटी बने नही। भूखी मैना खाये क्या?''

उसकी बात पर लाठी को हँसी आ गयी, बोली, ''भला सांप को मैं क्यों

राजा तुम ऊंट को बेच दो ऊंट नदी सोखे नहीं नदी आग बुझाय नहीं आग लाठी जलाये नहीं लाठी सांप को मारे नहीं सांप बढ़ई को डसे नहीं बढ़ई हत्थी चीरे नहीं हत्थी दाना दे नहीं दाना चक्की पीसे नहीं आटे बिना रोटी बने नहीं भूखी मैना खाये क्या?''

राजा गुस्से में भर कर बोले, ''नन्हीं चिड़िया, भाग जा! मैं अपने काम के ऊंट को क्यों बेच दूं?''

मैना राजा से डर कर उड़ गयी और महल में रानी के पास पहुंची। बोली ''रानी मां, रानी मां! तुम राजा से रूठ जाओ। राजा ऊंट बेचे नहीं, ऊंट नदी सोखे नहीं, नदी आग बुझाये नहीं, आग लाठी जलाये नहीं, लाठी सांप को मारे नहीं, सांप बढ़ई को डसे नहीं, बढ़ई हत्थी चीरे नहीं, हत्थी दाना दे नहीं, दाना चक्की पीसे नहीं, आटे बिना रोटी बने नहीं। भूखी मैना खाये क्या?''

रानी ने उसे भगाते हुए कहा, ''पागल पक्षी, भला मैं राजा से क्यों रूठूं? वह तो मेरे पति हैं।''

मैना भाग कर चूहे के पास पहुंची और बोली, ''चूहे भैया, तुम रानी के कपड़े कुतर दो। रानी राजा से रूठे नहीं, राजा ऊंट बेचे नहीं, ऊंट नदी सोखे नहीं, नदी आग बुझाये नहीं, आग लाठी जलाये नहीं, लाठी सांप को मारे नहीं, सांप बढ़ई को डसे नहीं, बढ़ई हत्थी चीरे नहीं, हत्थी दाना दे नहीं, दाना चक्की पीसे नहीं, आटे बिना रोटी बने नहीं। भूखी मैना खाये क्या?''

चूहा अपनी मूंछें ऊपर-नीचे मटका कर बोला, ''भोली मैना, मैं रानी के कपड़े क्यों काटूं। उसने मेरा क्या नुकसान किया है?''

मैना दुखी हो कर बिल्ली के पास पहुंची और गिड़गिड़ा कर बोली, ''मौसी-मौसी, तू चूहे को खा ले। चूहा रानी के कपड़े काटे नहीं, रानी राजा से रूठे नहीं, राजा ऊंट बेचे नहीं, ऊंट नदी सोखे नहीं, नदी आग बुझाये नहीं, आग लाठी जलाये नहीं, लाठी सांप को मारे नहीं, सांप बढ़ई को डसे नहीं, बढ़ई हत्थी चीरे नहीं, हत्थी दाना दे नहीं, दाना चक्की पीसे नहीं, आटे बिना रोटी बने नहीं। भूखी मैना खाये क्या?''

चूहे का नाम सुन बिल्ली बहुत खुश हुई। उसके मुंह में पानी भर आया। बोली, ''चल बेटी, मैं चूहा खाऊंगी।''

अब तो चूहे के होश बिगड़ गये और मैना से बोला, ''मैं रानी के कपड़े काटूंगा।''

रानी बोली, ''मैं राजा से रूठूंगी।''

राजा ने कहा, "मैं ऊंट को बचूंगा।"
ऊंट ने कहा, "मैं नदी सोखूंगा।"
नदी बोली, "मैं आग बुझाऊंगी।"
आग ने कहा, "मैं लाठी जलाऊंगी।"
लाठी बोली, "मैं सांप को मारूंगी।"
सांप बोला, "मैं बढ़ई को डसूंगा।"
बढ़ई बोला, "मैं हत्थी चीरूंगा।"
हत्थी ने डर कर कहा, "ले मैना, अपना चना।"

मैना अपना चना पा कर बहुत प्रसन्न हुई और लगा चक्की में आटा पिसने। ...वह रोटी पकायेगी और मजे से खायेगी।

टपके का डर

धनपुर गांव में रामधन नाम का कुम्हार रहता था। धनदेवी उसकी पत्नी का नाम था। मगर बेचारे के पास धन नाम की चीज नहीं थी। वह अपने दो नन्हे बच्चों के साथ बहुत गरीबी में दिन काट रहा था। मिट्टी के बर्तन बनाता और पास के कस्बे में बेच आता। रुपया-दो रुपया मजदूरी पल्ले पड़ जाती हैं। उसी से वह कस्बे से लौटते समय आटा, दाल, नमक-मिर्च, हल्दी आदि खरीद लाता। बस, इस तरह उसका गुजारा हो रहा था।

बरसात का मौसम आ गया। पंद्रह दिन की झड़ी लग गयी। सूरज के दर्शन दुर्लभ हो गये। खदाने में पानी भर गया। गरीब कुम्हार का धंधा चौपट हो गया। वह मिट्टी कहां से लाता, यदि कहीं से ले भी आता तो बर्तन कैसे सूखते, कैसे बर्तन पकाने का आवा जलाता? रिमझिम होती झड़ी एक मिनट के लिए रुकने का नाम न लेती थी। गली-गलियारे, आंगन-द्वारे पानी-ही-पानी। चारों ओर कीचड़-ही-कीचड़। बेचारे रामधन के घर उपवास रहने लगा।

यही हाल था जंगल में। जानवरों के बिलों में पानी भर गया था। जिसे जहा सुरक्षित जगह मिली, वह वहीं जा रहा। मगर जंगल का राजा शेरसिंह मांद में पानी भर जाने से बहुत परेशान था। कहां जाये अपने कुटुंब को लेकर? जंगल के जानवर वैसे ही उससे भय खाते हैं। कौन टिकायेगा उसे अपने यहां? अंत में उसने सोचा, क्यों न गांव में चला जाये। सब लोग घरों में दुबके होंगे। किसी मकान के छप्पर तले रात काट कर सुबह कहीं ठिकाना बना लेगा।

वह अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर गांव में आ गया। रामधन का मकान गांव में सब से पहले आता था। शेरसिंह ने उसकी छोटी-सी दीवार देखकर सोचा, क्यों न पहले यहीं जगह तलाश की जाये और वह अपने परिवार को पीछे आने को कह दीवार फांद गया। उसका अनुमान ठीक निकला। रामधन का परिवार भीतर कोठे में था और बर्तन रखने वाला छप्पर खाली पड़ा था। शेरसिंह अपने परिवार-सहित छप्पर में रात बिताने के लिए ठहर गया।

कुम्हार और कुम्हारी अपने भूखे बच्चों को सुला कर अब भी जाग रहे थे। उन्होंने सोने का भरसक प्रयत्न किया, मगर नींद कोसों दूर थी। एक तो भूखे, ऊपर से लगातार पानी बरसने से उसके खस्ता हुए मकान की कच्ची छत चूचिया गयी थी। मिट्टी के तेल की ढिबरी के धुंधले प्रकाश में वे दोनों छत को निहार रहे थे। यदि छत टपकने लगी तो क्या होगा? कहां छिपायेंगे ऐसे में अपने बच्चों को?

बारिश और तेज हो गयी। कुम्हार और कुम्हारी को नींद तो पहले ही नहीं आ रही थी, अब तो वे और भी घबरा गये। रामधन बादलों का रंग देखने के लिए चारपाई से उठा और दरवाजा खोल कर बाहर झांकने लगा। ढिबरी की रोशनी में छप्पर में आराम करते शेरसिंह के परिवार पर पड़ी। डर के मारे रामधन की घिग्घी बंध गयी और खट से दरवाजा बन्द करता घिघियाया—"बाप रे! शेर।"

मगर धनदेवी तो अपनी ही चिंता में डूबी थी। छत टपक गयी तो क्या होगा? इस काली घटाटोप रिमझिम की बरसाती रात में बच्चों को कहीं दूसरी जगह ले जाया भी नहीं जा सकता। वह रामधन की घिघियाहट सुन कर भी सहज और भोले ढंग से बोली, "शेर का डर, न सांप का डर...बस, मुझे तो टपके का डर है, जी!"

किवाड़ों के बीच की दराजों से होती हुई उनकी बातचीत शेरसिंह के कानों तक पहुंच गयी। वह चौंक गया। उसने टपके का नाम पहले कभी न सुना था। वह सोचने लगा कि टपका जरूर कोई बहुत शक्तिशाली जीव है, जो मुझ से ज्यादा बलवान और खूंखार है। तभी तो कुम्हारी टपके से ज्यादा डरती है। अगर वह यहां आ गया तो मेरा परिवार मुसीबत में फंस जायेगा। हो सकता है, मुझे उससे युद्ध भी करना पड़ जाये और प्राण गंवाने पड़ जायें। यहां से तो जंगल में ही अच्छे! कम-से-कम वहां टपका तो नहीं आयेगा। भीग भी गये तो ज्यादा से-ज्यादा नजला-जुकाम ही होगा, जो दो-चार दिनों में ठीक हो जायेगा। बस, वह अपने परिवार-सहित जंगल की ओर भाग गया।

भाग्यलक्ष्मी

बहुत समय पहले काशी में प्रजापालक नाम का राजा राज्य करता था। वह बडा शूरवीर एवं प्रतापी था। उसके दो बेटियां थीं। बड़ी का नाम राजलक्ष्मी और छोटी का नाम भाग्यलक्ष्मी था। राजा को घमण्ड हो गया कि सारी प्रजा का वही पालक है और सब उसके भाग्य के प्रताप से खाते हैं। एक दिन उसने बडी धूमधाम से राज-दरबार का आयोजन किया। सारी प्रजा दरबार की छटा देखने आयी। भरपूर दरबार में उसने अपने प्रधान मन्त्री अभयसिंह से पूछा, "मन्त्रीजी, आप किसके भाग्य का खाते हैं?"

अभयसिंह असमंजस में डूब गया। यदि वह अपने भाग्य को कहता है तो राजा अप्रसन्न होता है। राजा को अप्रसन्न करने का अर्थ है स्वयं को सपरिवार सकट में डालना। और यदि राजा को प्रसन्न करने के लिए उसके भाग्य को कहता है तो झूठ बोलना पड़ता है। मन्त्री ने झूठ से बचने के लिए तथा राजा को सन्तुष्ट करने के लिए चतुराई से उत्तर दिया, "अन्नदाता, कौन नहीं जानता कि सारी प्रजा राज-अन्न खाकर जीवित है।"

राजा उसके उत्तर से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने यही प्रश्न बार-बार अन्य दरबारियों से पूछा। सबने एक ही उत्तर दिया, "अन्नदाता, सब आपके भाग्य का खाते हैं। राजा तो ईश्वर का अवतार होता है।" प्रधानमन्त्री उन लोगों की मूर्खता पर मन-ही-मन कुढ़ता रहा।

राजा चाटुकारों की चाटुकारिता से बहुत प्रसन्न हुआ। सबको यथायोग्य पुरस्कारों से पुरस्कृत कर वह महल में आया। यही प्रश्न उसने अपनी दोनो बेटियों से किया। बड़ी लड़की राजलक्ष्मी ने दुलार में पिता से कहा, "भला यह भी कोई पूछने की बात है! आपके भाग्य से ही तो हमें ये सुख-सुविधाएं जुटी हुई हैं।"

छोटी लड़की भाग्यलक्ष्मी चुपचाप प्रश्न की गहराई पर सोचती रही। उसका मन कह रहा था, 'भाग्य सबके अलग-अलग होते हैं। एक फूल मन्दिर

म चढाया जाता है तो दूसरा अरथी पर स्थान पाता है एक आत्मा भीख मांगता है, तो दूसरा धन को पानी की भांति बहाता है। फिर कोई किसी के भाग्य का कैसे खा सकता है?' भाग्यलक्ष्मी को चुप देख राजा ने प्यार से पूछा, "बेटी तुम चुप क्यों हो? कहो, तुम भी हमारे भाग्य का खाती हो।"

"नहीं पिताजी, मैं अपने भाग्य का खाती हूं।" भाग्यलक्ष्मी ने स्पष्ट शब्दो मे विरोध किया।

"मूर्ख लड़की! जानती है हम राजा हैं, तुम्हें उद्दण्डता का दण्ड भुगतना पडेगा।" राजा ने कड़क कर कहा।

"पिताजी जानती हूं, यदि मेरे भाग्य में भीख मांगना लिखा होगा तो आपके प्रयास से भी मुक्ति न मिलेगी।" भाग्यलक्ष्मी ने विनम्र स्वर में उत्तर दिया।

"तो समझ लो, भीख मांगना ही तुम्हारा भाग्य है।" राजा ने कुपित होकर कहा।

"जैसी प्रभु की इच्छा होगी! मैं क्या कर सकती हूं!" भाग्यलक्ष्मी ने फिर पिता की आज्ञा शिरोधार्य की।

प्रजापालक ने बड़ी लड़की राजलक्ष्मी का विवाह बड़ी धूमधाम के साथ एक राजकुमार के साथ कर दिया और भाग्यलक्ष्मी को दण्ड देने के लिए उसे एक गरीब लकड़हारे से ब्याह दिया। राजलक्ष्मी पालकी में बैठ कर नौकर चाकरों के साथ अपनी ससुराल गयी और भाग्यलक्ष्मी अपने साधारण कपड़े पहने लकड़हारे के घर पैदल ही चली गयी। राजलक्ष्मी अपनी छोटी बहिन की ढीठता से खिन्न थी और मन-ही-मन प्रसन्न थी कि उसको उद्दण्डता का दण्ड मिल गया। बेचारी भाग्यलक्ष्मी अपने विवाह से सन्तुष्ट थी और उसे बड़ी बहन के भाग्य से कोई ईर्ष्या न थी।

समय बीतने लगा। भाग्यलक्ष्मी अपने पति लकड़हारे से बहुत प्रसन्न थी। भाग्यलक्ष्मी से विवाह हो जाने के बाद लकड़हारे की आय में भी वृद्धि होने लगी थी। लकड़ियों का गट्ठर, जो पहले चार छः रुपये में बिकता था, अब उसके आठ-दस रुपये मिलने लगे। भाग्यलक्ष्मी अपनी सीमित आय में घर का खर्च चलाती और भविष्य के लिए एक-दो रुपया बचा भी लेती। एक दिन उसने सोचा, यदि वह लकड़ी काटने में अपने पति का हाथ बंटाये तो आय दुगनी हो सकती है। रात में सोते समय उसने लकड़हारे से अपने मन की बात कह दी। लकड़हारा उसकी बात पर सहमत नहीं हुआ, बोला, "तुम यह सब कैसे कर सकोगी? राजकुमारी होकर लकड़ी का बोझ उठाओगी तो लोग क्या कहेंगे?"

"काम करने में लज्जा नहीं होनी चाहिए। लोग केवल दो दिन ऐसा कहते हैं फिर सब चुप हो जाते हैं। और हां, पति के कार्य में हाथ बंटाना तो मेरा धर्म भी है। फिर मैं किसी की परवाह क्यों करूं?" भाग्यलक्ष्मी ने उसे समझाया।

लकड़हारा उसके आग्रह-विनय की उपेक्षा न कर सका और अगले दिन प्रातःकाल वे दोनों घने वन में लकड़ी काटने चले गये। जिस पेड़ की लकडी लकड़हारा काटा करता था उस पर बहुत-से सांप लिपट रहे थे और उससे फूटती सुगन्ध दूर-दूर तक हवा में फैल रही थी। लकड़हारे को देखते ही सांप पेड से उतर कर अपनी-अपनी बांबियों में सरक गये। राजकुमारी यह सब देख कर चकित रह गयी। उसने पूछा, "क्यों जी! क्या नित्य इसी पेड़ की लकडिया बेचा करते हो?

"हां।" लकड़हारे ने उत्तर दिया।

भाग्यलक्ष्मी समझ गयी कि उसका पति चन्दन के विषय में नहीं जानता और महाजन उसको ठग लेता है। लकड़ी काट कर उन्होंने शहर की राह ली। नित्य की भांति महाजन लकड़हारे की प्रतीक्षा कर रहा था। आज दो गट्ठर लकड़ी देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। जब लकड़ी का मोल-भाव होने लगा तो राजकुमारी अपने पति से बोली, "आज की लकड़ी मैं बेचूंगी, आप चुपचाप देखते रहें!"

महाजन समझ गया कि लकड़हारे की पत्नी कुछ अधिक चतुर है। उसने लकड़ी का मूल्य और दिनों की अपेक्षा दो रुपये बढ़ा कर दिया।

भाग्यलक्ष्मी ने पैसे लौटाते हुए कहा, "साहूकार जी, आज से लकडियां इतनी सस्ती नहीं मिलेंगी। अब तक आप मेरे पति को मूर्ख बनाते रहे हैं और थोडे-से पैसे दे कर स्वयं भारी लाभ कमाते रहे हैं। चन्दन की लकड़ी इतने कम दामों में आपको कौन बेचेगा? भलाई चाहो तो आज तक का सारा बाकी पैसा चुकता कर दो, वरना हम राजदरबार में आप पर मुकदमा चलायेंगे।"

अब तो महाजन बहुत घबराया। उसने सोचा, न जाने राजा उसके छल का क्या दण्ड दे! उसने सारा हिसाब जोड़ कर बहुत-सा धन दे, उन्हें विदा किया। लकड़हारा भाग्यलक्ष्मी की पटुता से बड़ा प्रभावित हुआ और वे प्रसन्न होते हुए अपने घर चले आये।

अब उनका भाग्य उदय हुआ और जल्दी ही लकड़हारा नगर के लकडी के प्रमुख व्यापारियों में गिना जाने लगा! उसने शहर से बाहर बहुत बड़ी कोठी बनवायी और बहुत-से नौकर-चाकर सेवा-टहल के लिए रख लिये।

भाग्य की बात! प्रजापालक पर पड़ोसी राजा ने आक्रमण कर दिया। घमासान युद्ध हुआ और प्रजापालक पराजित हो गया। उसे राज्य छोड़ कर भागना पड़ा। उधर दुर्दिनों ने राजलक्ष्मी को भी धर दबोचा। उनके कोष को लुटेरे लूट ले गये। वेतन न मिलने से सेना बागी हो गयी। राजलक्ष्मी को अपने भाग्य पर रोना आता। उसकी सास राजमाता उसे कुलच्छनी कहती। समय की बात! लकड़हारे ने राजलक्ष्मी के पति को अपने यहां मैनेजर के पद पर नियुक्त कर दिया। अब तक उसका व्यवसाय दूसरे देशों तक फैल चुका था और उसे एक योग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी।

एक दिन भाग्यलक्ष्मी अपनी कोठी की छत पर बैठी डूबते हुए सूरज का आनन्द ले रही थी। उसने एक स्त्री और पुरुष को दूर से आते देखा। जब वे निकट आये, तो भाग्यलक्ष्मी उन्हें पहचान कर हैरान रह गयी। मां-बाप की दुर्दशा देख कर उसकी आंखों में पानी आ गया। उसने नौकर भेज कर उन्हें कोठी में बुलवा लिया। मां ने बेटी को पहचान लिया और दोनों गले मिल कर देर तक रोती रहीं। प्रजापालक को अपने किये पर पछतावा हो रहा था।

भाग्यलक्ष्मी ने उनके फटे-पुराने कपड़े उतरवा कर अच्छे वस्त्र पहनाये और कोठी में रहने के लिए एक सजा-सजाया कमरा उन्हें दे दिया। एक दिन उनका मैनेजर किसी काम से लकड़हारे से मिलने के लिए आया और भाग्यलक्ष्मी की मां ने उसे पहचान लिया। उसने सास के चरण छू कर अपनी सारी कथा सुना दी। भाग्यलक्ष्मी ने अपनी बहिन राजलक्ष्मी को भी बुलवा लिया। सारे नाते-रिश्तेदार मिल कर लकड़हारे के व्यवसाय में हाथ बंटाने लगे। उनका व्यापार दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करने लगा। एक दिन सब लोग बैठे हुए गप्पें लड़ा रहे थे तो भाग्यलक्ष्मी ने पिता से पूछा, "पिताजी, कौन किसके भाग्य का खाता है, अब तो समझ गये होंगे?"

राजा बहुत लज्जित हुआ और भरे कण्ठ से बोला, "बेटी, सब अपने-अपने भाग्य का खाते हैं। मैं सत्ता के घमण्ड में अंधा हो गया था। उसका मुझे प्रायश्चित करना पड़ रहा है।" और अपने दुर्भाग्य पर उसकी आंखें भर आयी।

टेढ़ा बाल

किसी गांव में धनपतराय सेठ रहा करता था। वह गांव वालों को ब्याज पर रुपया उधार दिया करता था। ब्याज वह नाम-मात्र का लेता था, इसलिए गांव के गरीब-अमीर सभी उससे ऋण ले लेते थे और बदले में कोई चीज गिरवी रख जाते थे। उसी गांव में ठाकुर प्रतापसिंह रहता था। कभी ठाकुर का परिवार सब भाँति सम्पन्न था, किन्तु ईश्वर का कोप ऐसा हुआ कि वह बहुत गरीब हो गया। उसकी सारी संपत्ति बिक गयी और वह भूखों मरने लगा। फिर भी उसकी नीयत खराब नहीं हुई। वह अपने लेनदारों से हाथ जोड़ कर कहता, ''भाइयो, ये मेरे दुर्दिन हैं। आप लोगों का सहारा है। हाथ में आते ही सबका पैसा-पैसा चुका दूंगा।''

लोग उसकी दयानतदारी पर खुश होते और कहते, ''भाई, जब तुम्हारे हाथ में पैसे आ जायें तो चुका देना। हां, जल्दी हो जाये तो हमारा भी काम-धंधा चले।'' और वे बिना कुछ लिये लौट जाते।

प्रतापसिंह के एक लड़की थी, जो सयानी हो गयी थी। प्रतापसिंह को उसके विवाह की चिंता सताने लगी थी। मगर रुपये कहां से आयें? सबसे उसने उधार पहले ही ले रखा था, लौटाया किसी का भी नहीं था। फिर उनसे दोबारा रुपये कैसे कर्ज ले? केवल धनपतराय एक ऐसा व्यक्ति था, जिससे उसने कभी रुपया नहीं लिया था। उससे ऋण लिया जाये तो बंधक रखने को उसके पास कुछ भी नहीं था। अंत में बहुत सोच-विचार करने पर वह सेठ के पास पहुंचा। धनपतराय ने उसकी खूब आवभगत की और आने का कारण पूछा, किंतु संकोचवश ठाकुर कुछ कह नहीं पा रहा था। सेठ के बार-बार पूछने पर उसने आने का कारण बताया। सेठ रुपये की बात सुन कर कुछ गंभीर हो गया और बोला, ''बंधक क्या रखोगे भाई?''

''सेठजी बंधक रखने को मेरे पास कुछ भी नहीं।'' प्रतापसिंह ने अपनी विवशता जतायी।

"ठाकुर साहब, रुपये आपको अवश्य दूंगा। फिर लड़की के विवाह के लिए तो मना करूंगा नहीं। आपकी बेटी गांव की बेटी है। हमारी बेटी है। मगर विवाह में बहुत रुपये लगते हैं। इतने रुपये के लिए आपको कुछ न कुछ गिरवी रखना ही होगा।" सेठ ने अपने व्यापार की शर्त को चतुराई से बता दिया।

ठाकुर प्रतापसिंह थोड़ी देर सोच-विचार कर बोला, "ठीक है, मैं अपनी मूंछ का बाल गिरवी रखता हूं। आप मुझे पांच सौ रुपये दे दीजिये।"

सेठ ने प्रसन्न हो उसकी मूंछ का बाल लेकर एक सुन्दर डिबिया में बंद कर रख लिया और छः सौ रुपये गिन कर पकड़ाते हुए कहा, "ये सौ रुपये हमारी ओर से बिटिया के विवाह में कन्यादान में देंगे। जब आप के पास रुपया हो जाये तो बाल को छुड़ा ले जायेंगे।"

ठाकुर रुपये लेकर प्रसन्न हो अपने घर लौट आया। उसने लड़की का विवाह बड़ी धूमधाम से किया। सारा गांव अचंभे में रह गया। ठाकुर के पास रुपये कहां से आये? धीरे-धीरे रुपये पाने की बात सारे गांव में फैल गयी। मूंछ के बाल के बदले रुपये मिल गये-- सबके लिए हैरानी की बात थी!

उसी गांव में दुर्जनसिंह नाम का दूसरा ठाकुर रहता था। वह बड़ा धूर्त था। लोगों को बिना बात तंग किया करता था। जिससे उधार लेता था, उसे कभी लौटाता न था। मांगने पर झगड़ा करने लगता था। जब उसे पता चला कि प्रतापसिंह रुपये सेठ धनपतराय के यहां से लाया है और सेठ ने रुपये केवल मूछ का बाल बंधक रख कर दिये हैं तो वह भी खूब बन-ठन कर मूंछों में तेल लगा उन्हें उमेठ कर सेठजी के पास पहुंचा। बोला, "सेठजी, मुझे एक हजार रुपये चाहिए।"

सेठ उसके बोलने के रोबीले ढंग से समझ गया कि दाल में काला है। वह विनम्र स्वर में बोला, "रुपया तो आपको अवश्य मिल जायेगा, लेकिन गिरवी क्या रखेंगे?"

"भला यह भी कोई पूछने की बात है। हम भी प्रतापसिंह की भांति अपनी मूंछ का बाल गिरवी रख देंगे।" दुर्जनसिंह ने मूंछों पर ताव देकर एक बाल उखाड़ते हुए कहा, "लो, यह बाल रख लो!"

सेठ बहुत चतुर व्यक्ति था। वह एक क्षण के लिए गंभीर हो गया और फिर बाल को उसके हाथों से लेकर आंखों के सामने कर बोला, "ठाकुर साहब, बाल तो कुछ टेढ़ा है।"

"दूसरा ले लो।" कह कर दुर्जनसिंह ने मूंछ का दूसरा बाल फुर्ती से

उखाड़ लिया और बोला, "चाहे कितने ही बाल ले लें। बालों की क्या कमी है?"

सेठ उसकी मंद बुद्धि पर मुसकराया और बोला, "ठाकुर साहब, आपको रुपये नहीं मिलेंगे।"

"क्यों?" दुर्जनसिंह ने हैरान होकर पूछा।

"बाल का मुझे क्या करना है? बाल टेढ़ा हो या सीधा, मेरे किस काम का? हां, मूंछों की प्रतिष्ठा का मैं आदर करता हूं। जब आप अपनी मूंछों की मर्यादा नहीं समझते तो मैं कैसे मान लूं कि आप बंधक रखे बाल को रुपये देकर छुड़ा लेंगे।" सेठ ने दुर्जनसिंह को समझाया, "भाई, मूंछें आदमी के आत्मगौरव का प्रतीक हैं। सुना भी होगा—मैं मूंछे नीची नहीं होने दूंगा...वचन पूरा न किया तो मूंछें मुंड़ा दूंगा, आदि।"

दुर्जनसिंह धनपतराय की बात सुन कर बड़ा लज्जित हुआ और मुंह लटकाये अपने घर लौट गया।

रंग वाला कुआं

बहुत दिन पहले रंगपुर गांव में रंगीलाल नाम का पहलवान रहता था। उसकी पहलवानी की धाक पास-पड़ोस के सभी गांवों में जमी हुई थी।

एक बार गांव के एक दूसरे पहलवान मोटूराम ने उसे कुश्ती के लिए ललकारा। रंगीलाल ने चरखी वाला दांव चला कर मोटू को आकाश दिखा दिया। अब क्या था? उस दिन से रंगीलाल 'गुरु रंगी' हो गया।

गांव के हनुमान मन्दिर में उसका अखाड़ा था। बजरंग बली और नौरंग अली उसके दो नामी पट्ठे थे। कुछ ही दिनों में वे अपने गुरु की भांति मल्लयुद्ध में निपुण हो गये। ताकत में बेजोड़। लाठी लेकर फैल जायें, तो पचास को भी भारी पड़ें। होते-होते गांव में गुरु रंगी का यश बहुत बढ़ गया। गांव वाले हर काम में उसे बुलाते। रंगी भी गरीब-अमीर का भेद किये बिना सब के घर जाता था।

एक वर्ष देश में भीषण अकाल पड़ा। पानी के अभाव में फसलें सूख गयीं। गांव के लोग बेकार हो गये। बरसात आयी और बिना बरसे चली गयी। लोगों की चिंता बढ़ने लगी। होली का त्योहार सिर पर था। गांव के तालाब का पानी भी सूख गया था। गांव की पंचायत बुलायी गयी। निर्णय किया गया कि इस वर्ष होली का रंग घोलने में पानी नष्ट न किया जाये।

दिन ढले हनुमान मन्दिर में गुरु रंगी के चेले बजरंग बली और नौरंग अली ठंडाई घोट रहे थे। भांग घुट-छन कर तैयार हुई, तो गुरु ने एक लोटा ठंडाई गले मे उतारी और 'जय बजरंग बली' की हुंकार भरी। तभी गांव का ननवा नाई वहा आया और बोला, "पहलवान, ठंडाई ही पीते रहोगे! गांव की भी कुछ खैर-खबर है?"

"क्या हुआ?" भांग की गमक में मस्त बने हुए गुरु रंगी ने पूछा।

"गांव पंचायत ने फैसला किया है कि पानी की कमी के कारण इस बार होली का रंग नहीं खेला जाएगा।" ननवा ने खबर सुनायी।

भाग की तरग मे गुरु रगी दूर की खबर लाता था। थाड़ा देर सोच कर बोला, ''यह नहीं हो सकता। होली का रंग जरूर खेला जायेगा।''

''लेकिन गुरुजी, कैसे?'' नौरंग ने पूछा।

''यह तो गजब हो जाएगा। इस तरह तो साल-भर का त्योहार फीका रह जाएगा।'' बजरंग ने चिंता व्यक्त की।

गुरु रंगी ने थोड़ी देर तक सोचा। फिर एकाएक नौरंग की कमर पर जोर से थाप मारते हुए कहा, ''समझ गया! हमें जंगल से शहर के रास्ते के किनारे वाला कुआं अपने गांव में उठा लाना चाहिए। क्यों, ठीक है न?''

''बिलकुल ठीक है।'' बजरंग ने कहा।

दिन छिप गया। पूनम का चांद निकल आया। गुरु-चेलों ने.तुरन्त जगल की राह ली। शहर के निकट रास्ते के किनारे एक ऊंची जगत का पक्का कुआं था। उन्होंने साथ लाये हुए रस्सों से कुएं की जगत को लपेट कर बांध दिया। फिर तीनों गुरु-चेले कुएं को उखाड़ने के लिए रस्सों को खींचने लगे। जैसे-जैसे चाद ढल रहा था, जगत की परछाईं लम्बी होती जा रही थी। भांग के नशे मे वे सोच रहे थे कि कुआं अपनी जगह से खिसक रहा है।

इस प्रकार जूझते हुए उन्हें बहुत समय बीत गया। कुआं अपने स्थान से इच भर न हिला। थक कर वे बैठ गये और कहने लगे, ''बस, थोड़ा-सा काम रह गया है। आराम करके पूरा जोर लगायेंगे, तो कुआं अवश्य उखड़ आयेगा।''

थोड़ी देर विश्राम करके वे पुनः जोर लगाने लगे।.तभी उधर से राजा की सवारी आ निकली। राजा अपने मंत्री को साथ लेकर रात में गश्त लगाया करता था। राजा की दृष्टि उन तीनों पर पड़ी। उसने मंत्री से कहा, ''मंत्रीजी, जा कर देखो, ये लोग क्या कर रहे हैं?''

मंत्री ने उनके पास जा कर कहा, ''भाई, हमारे राजा पधारे हैं। वे जानना चाहते हैं कि आप इस कुएं को बांध कर क्यों खींच रहे हैं?''

''हमारे गांव में पानी की भारी कमी है। कल होली का त्योहार है। हमें रग खेलने के लिए पानी चाहिए। इसी लिए हम कुएं को उखाड़ कर अपने गांव मे ले जाना चाहते हैं।'' रंगीलाल ने मंत्री को बताया।

मंत्री को उनकी भोली-भाली बातों पर बड़ा तरस आया। उसने जा कर सारी बातें राजा से कह दीं। राजा को पहले तो उनकी मूर्खता पर हँसी आयी। फिर उसने मन-ही-मन सोचा, 'इनके लिए पानी का इंतजाम करना राजा का कर्तव्य है।' उसने रंगी को बुलवा कर कहा, ''भाई, आप लोग अपने गांव चले

जाएं। कुआं उठवा कर हम वहीं पहुंचवा देंगे।''

''भला आप हमारे लिए क्यों कष्ट उठायेंगे? हम तो कुआं ले कर ही जायेंगे।'' रंगी ने अपने मन की शंका प्रकट करते हुए कहा।

''तुम्हें अपने राजा पर विश्वास नहीं! प्रजा की संकट में रक्षा करना राजा का धर्म होता है। तुम विश्वास करो। कुआं अवश्य पहुंचा दिया जायेगा।'' राजा ने उसे समझाया।

बात गुरु रंगी की समझ में आ गयी। वह अपने चेलों को ले कर गांव लौट गया। राजा ने मंत्री को आदेश दिया, ''शहर के सारे मजदूर और मिस्त्री लगा कर उस गांव में तुरन्त कुआं तैयार करा दिया जाए, जिससे दिन निकलते ही वे लोग अपना त्योहार मनायें और उन्हें हमारे कथन पर भरोसा हो जाये।''

दिन निकला, तो गांव के लोग भौचक्के रह गये। जब वे लोग सोये थे, तो कुएं का वहां निशान तक न था। अब वहां बिलकुल नया कुआं मौजूद था। ननवा नाई ने लोगों को बताया कि यह सब गुरु रंगी की कृपा से हुआ है। बस, सब लोगों ने गुरु रंगी का बड़ा सा जलूस निकाला। कुएं पर ले जाकर उससे कुएं का उद्घाटन कराया। गुरु रंगी ने पानी का डोल खींचा। उसमें रंग घोल कर रंगी ने गांव के लोगों पर छिड़का। बड़ी धूमधाम से होली का रंग खेला गया। उस दिन से उस कुएं का नाम ही रंग वाला कुआं पड़ गया।

चौपट नगरी का राजा

बहुत समय पहले चौपट नगरी में पोपट नाम का राजा राज करता था। वह मन का बहुत अच्छा था, पर था मन्दबुद्धि। उसका सारा राज-काज उसके मन्त्रीगण चलाते थे। मन्त्रियों में अधिकांश चाटुकार थे, जो राजा को सदा उल्टी-सीधी बातें पढाते थे। बेचारा पोपट उनकी बातों को मान लेता और सारी बदनामी उसको सहनी पड़ती।

फिर भी उसके राज में सुख-शान्ति थी। कोई किसी को कष्ट न पहुचा सकता था। अपराधियों को आंख मूंद कर कड़ा दण्ड दिया जाता था। भय के मारे लोगों को अपराध करने का साहस नहीं होता था। वह चोरी करने वालों के हाथ कटवा देता था। महिलाओं के प्रति अभद्र व्यवहार करने वालों की जीभ कटवा लेता था। घूसखोरों को काला मुंह करवा गधे पर चढ़ा कर सारे शहर में घुमवाता था। कठोर दण्ड-व्यवस्था होने से किसी व्यक्ति को अपराध करने का साहस न होता था।

वह विद्वान लोगों का सम्मान करता था। उन्हें पुरस्कार में धन दिया करता था। इस पर भी चतुर लोग उसके राज्य में रहना नहीं चाहते थे। सोचते थे— यदि जाने-अनजाने कभी उनसे कोई अपराध हो गया तो कड़ा दण्ड भुगतना होगा। राजा दण्ड देने में किसी के साथ पक्षपात नहीं करता था। इसलिए सभी विद्वान लोग उसका राज छोड़ कर दूसरे राज्यों में जा बसे थे।

पोपट राजा को पशु-पक्षी पालने का बहुत शौक था। चौपट नगरी का चिड़िया-घर दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। उसमें देश-विदेशों के बहुत-से पशु-पक्षी थे। राजा के महल के अन्दर निजी चिड़ियाघर भी था।

उसकी सेना में ऊंट, घोड़े और हाथी थे। उनमें से बहुत-से विदेशों से खरीद कर मंगाये गये थे। राजा की सवारी के लिए गयंदराज नाम का एक बहुत बडा हाथी था। पोपट राजा गयंदराज को बहुत प्यार करता था। कभी-कभी हँसी मे वह कहता, ''गयंदराज हमारा खानदानी हाथी है। इस पर हमारे पूर्वजों ने सवारी की है। इसलिए यह पूर्वजों की भांति पूजनीय है।''

और सच ही उसने एक दिन गयंदराज की जयन्ती मना डाली। बहुत बडे

भोज का आयोजन किया गया। ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दी गयी। गरीबों को कपड़ा और भोजन बांटा गया। दूसरे राज्यों के राजाओं को शाही भोज में आमन्त्रित किया गया।

फिर सन्ध्या समय गयंदराज को विभिन्न रंगों से खूब सजाया गया। रत्नजड़ित झूल ओढ़ायी गयी। नगर भर के बाजे मंगवाये गये। सारे शहर में गयंदराज का जलूस निकाला गया। जनता ने पुष्प-वर्षा कर हाथी के दीर्घजीवन की मंगल कामनाएं कीं।

रात भर उत्सव मनाया गया। अगले दिन हाथी का महावत घबराया हुआ पोपट राजा के पास हाथ जोड़े आया। डर के मारे वह थर-थर कांप रहा था। पोपट राजा ने पूछा, "क्या बात है? दिन निकलते ही कैसे आये?"

बेचारा महावत बहुत डरा हुआ था। सोच रहा था—राजा उसकी बात सुन कर कहीं दण्ड न दे दे। बड़े आदमियों का स्वभाव विचित्र हुआ करता है। अपनी धुन में वे दूसरों की बात नहीं सुनते।

महावत को चुप देखकर पोपट राजा क्रोध से उबल पड़ा, "बोलता क्यों नहीं? क्या तेरी जीभ कट गई? जल्दी बताओ क्या बात है?"

"महाराज...महाराज...!" घिघियाया हुआ महावत बोला, "गयंदराज!"

"हां, क्या हुआ गयंदराज को?" राजा ने कड़क कर पूछा।

"महाराज, गयंदराज बहुत उदास है।" महावत ने साहस कर कह डाला "उसने ईख बिलकुल नहीं खायी। उसकी आंखों में से पानी बह रहा है। लगता है, वह बीमार हो गया है।"

पोपट राजा ने हाथी के बीमार होने की बात सुनी तो दुखी हुआ। उसने सारे राज्य में ढिंढोरा पिटवाया कि जो गयंदराज को स्वस्थ कर देगा, वह राज्य से दस सहस्र स्वर्ण-मुद्राओं का पुरस्कार प्राप्त करेगा।

बस सारे राज्य में चिकित्सक गयंदराज के उपचार को उमड़ पड़े। सब अपनी चिकित्सा के चमत्कार दिखाने को उतावले हो रहे थे। सभी को विश्वास था कि वे गयंदराज को रोगमुक्त कर दस सहस्र मुद्राओं का पुरस्कार पा लेंगे। किन्तु गयंदराज का रोग किसी की समझ में न आया। धीरे-धीरे वे सब चुपचाप वहां से खिसकने लगे। कहीं लेने के देने न पड़ जायें। गयंदराज को कुछ हो गया, तो इनाम के बदले दंड ही हाथ लगेगा।

गयंदराज का स्वास्थ्य दिनोंदिन बिगड़ रहा था। पोपट राजा ने हाथी का स्वास्थ्य ठीक न होता देख कर ज्योतिषियों को बुलाया और उसके ग्रह-नक्षत्र दिखलाये।

ज्योतिषियों में सुजान नाम का एक बहुत चतुर ज्योतिषाचार्य था। वह

समझ गया कि गयंदराज को कोई बीमारी नहीं और बुढ़ापे के कारण उसका स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। वह कुछ ही दिनों का मेहमान है। यदि गयंदराज राजा के निकट रहा तो राजा यों ही व्यर्थ में लोगों को परेशान करता रहेगा। अपनी बुद्धि से काम लेना वह जानता नहीं और चाटुकार लोग उसकी मूर्खता से अपना उल्लू सीधा करते रहेंगे।

उसने राजा को सलाह दी—"श्रीमान्, आप गयंदराज को किसी गांव में भेज दीजिये। वहां शुद्ध वायुसेवन से इसका स्वास्थ्य स्वयं ठीक हो जायेगा।"

सुजान की बात पोपट राजा की समझ में आ गयी। उसने तत्काल उत्तर दिया, "हम गयंदराज को तुम्हारे गांव में भिजवा देते हैं। शाही हाथी होने के नाते उसके उपचार का दायित्व सारे गांव के लोगों पर होगा। जो इसके मरने की सूचना देगा उसको हम फांसी पर चढ़वा देंगे।"

अब तो सुजान की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। वह चला था दूसरों का उद्धार करने। पर स्वयं फंसा तो फंसा ही, साथ में गांव वालों को भी ले डूबा।

बेचारा चुपचाप अपने गांव लौट गया। क्या करता! राज-आज्ञा की अवहेलना करना भी तो अपनी मौत को निमन्त्रण देना था!

गयंदराज सुजान के गांव पहुंचा दिया गया। गांव के सभी लोग जी-जान से उसकी सेवा-टहल करने लगे। किन्तु उसका स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता चला गया और एक दिन रात को वह मर गया।

सारा गांव संकट में फंस गया। राजा को हाथी की मृत्यु की सूचना देने कौन जाये? सारे गांव की पंचायत बैठी, पर किसी को उपाय न सूझा। सुजान को भी हाथी के मरने की सूचना मिल गयी। वह बड़ी देर तक सोचता रहा। गाव वालों पर यह आपत्ति उसी के कारण आयी है। उनकी रक्षा करना उसका कर्तव्य है। उसने एक युक्ति सोची और स्वयं राजा को सूचना देने चला।

चौपट नगरी पहुंच कर उसने पोपट राजा को इस प्रकार सूचना दी—"श्रीमान्! गयंदराज रात से न कुछ खाता-पीता है और न सांस लेता है। करवट भी नहीं लेता। उसके मुंह पर मक्खियां भिनभिना रही हैं।"

"तो क्या वह मर गया?" राजा ने तपाक से पूछा।

"मैं नहीं कहता श्रीमान्! यह आप ही कह रहे हैं।" सुजान ने मुसकरा कर उत्तर दिया।

पोपट राजा उसकी वाक्-पटुता पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएं देकर विदा किया।

सुजान चौपट नगरी से पोपट राजा की जय-जयकार करता हुआ घर लौट गया। सच है— विद्वान सर्वत्र पूजे जाते हैं।

चालाक लोमड़ी

एक समय की बात है—किसी तालाब के किनारे सुमति नाम की एक बत्तख रहा करती थी। वह बड़ी सरल-हृदय थी। दिन भर तालाब के किनारे दाना चुगती। पानी में तैर कर नन्हे कीड़ों को बीन कर खाती और रात को निकट के पीपल पर जा कर सो जाती। उस तालाब में कुलक्षणा लोमड़ी पानी पीने आया करती थी। थोड़े दिनों तक दोनों में काम धन्धे की बातचीत होती रही और फिर वे आपस में अंतरंग सहेलियां बन गयीं। कुछ ही दिनों में उनकी मित्रता सारे जंगल के जानवरों में प्रसिद्ध हो गयी। लोमड़ी की मक्कारी को सब लोग जानते थे। एक वृद्ध मोर ने सुमति को समझाया भी था—"सुमति बहन, लोमड़ी पर विश्वास न करो। वह बहुत चालाक है।"

"मुझे उसकी मित्रता से मतलब है। चालाकी से मुझे क्या लेना देना।" बत्तख ने भोला-सा उत्तर दिया। मोर बेचारा अपना-सा मुंह लिये रह गया। वर्षा ऋतु की काली घटाएं आकाश में फैल रही थीं और उसका मन नाचने को मचल रहा था।

थोड़ी देर में कुलक्षणा कहीं से चिड़िया मुंह में दबाये आ पहुंची। तालाब के किनारे बैठकर उसने चिड़िया को खूब चटखारे ले कर खाया। फिर ठंडा पानी पिया। दूसरे किनारे से तैरती हुई सुमति उसके निकट आयी। कुलक्षणा के जबड़े मे खून और इधर-उधर फैले पंख देखकर बोली, "दीदी कुलक्षणा, हमें रोज भोजन की चिन्ता रहती है। तुम्हें चोरों की भांति दूसरे जानवरों के अंडे बच्चे उड़ाने की जरूरत पड़ती है और मुझे बीमारी में भी कीड़े पकड़ने को तालाब में घुसना पड़ता है। आओ, क्यों न हम मिल कर खेती कर लें!"

सुमति की बात से कुलक्षणा सहमत हो गयी, बोली, "यह जो सामने खाली जमीन है, उसमें हमें फसल उपजानी चाहिए। वर्षा का मौसम है। गीली जमीन की जुताई भी जल्दी और अच्छी हो जायेगी।"

उन्होंने मिल कर एक छोटा-सा खेत बना लिया और उसकी जुताई गुड़ाई

आरम्भ कर दो लोमड़ी पारश्रम से घबराने लगी वह तो सदा चोरी का माल खाने की अभ्यस्त थी एक दिन उसने बहाना बनाया सुमति दीदी मेरा एक निकट सम्बन्धी बहुत बीमार है। उसे देखने जाना है। हो सकता है, वहां मुझे कुछ दिन लग जायें। तब तक तुम मेरी खेती का दायित्व संभाल लो।''

सुमति उसकी चालाकी न समझी और अकेली ही गेहूं बोने के लिए खेत तैयार करती रही। जाड़ा आरम्भ होते ही उसने गेहूं बो दिये, किन्तु लोमड़ी उसे कहीं दिखायी न पड़ी। जाड़ों में एक-दो महावट हो गयीं। गेहूं की फसल लहलहाने लगी। सुमति अपनी मेहनत को हरा-भरा देखकर बहुत प्रसन्न थी। कुछ दिनों बाद गेहूं की बालियां लग आयीं। फिर उसमें दाने लग आये। सुमति कुलक्षणा की प्रतीक्षा करते-करते थक गयी। पर वह लौटकर न आयी।

जाड़ों के बाद गरमी आने लगी। बालियों का रंग सुनहरा पड़ने लगा। गेहूं पकने लगा। एक दिन सुमति खेत पर से घर लौट रही थी तो रास्ते में कुलक्षणा मिल गयी। सुमति ने उससे खेत देखने का आग्रह किया। पका हुआ गेहूं देखकर कुलक्षणा ललचा गयी, बोली, ''देखो, मेहनत का फल मीठा होता है। अब मैं कभी चोरी कर, किसी जानवर को नहीं खाऊंगी। यह सब गेहूं मेरा है।''

बेचारी सुमति अपनी कमाई को यों छिनती देख बड़ी दुखी हुई। उसके खेत के पास भालू रहता था। वह भी सुमति का दोस्त बन गया था। सुमति ने रोते हुए सारी कहानी भालू को सुनायी। भालू गुर्रा कर बोला, ''देखो दीदी, यह रोना-धोना हमें अच्छा नहीं लगता। तुम हमारे कहने पर चलो। फिर देखते हैं वह टुइयां-सी लोमड़ी तुम्हारा गेहूं कैसे लेती है।''

सुमति ने गेहूं काट कर खलिहान में रखा। कुलक्षणा गेहूं कटवाने भी नहीं आयी। वह सोच रही थी कि मड़ाई कर लेने पर वह सुमति से जबरदस्ती गेहूं ले लेगी। सुमति ने दाने और भूसा अलग कर लिया और अपने घर ले जाने की तैयारी करने लगी। तभी कुलक्षणा आयी, बोली, ''क्यों री, मेरा गेहूं कहां ले जाती है?''

''गेहूं तो मेरा है।'' सुमति ने रोनी सूरत बना कर कहा।

''वाह! चोरी और सीनाजोरी। ठहर तो सही, मैं तुझे चोरी करने का मजा चखाती हूं!'' और कुलक्षणा सुमति को खाने के लिए झपटी। सुमति उड़ कर पीपल पर जा बैठी। लोमड़ी ने सोचा, 'बस, अब गेहूं मेरा है।' वह गेहूं के ढेर के पास पहुंची। ढेर में उसे कोई गोल-गोल वस्तु चमकती दिखायी पड़ी। वह मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुई, ''अहा! बेवकूफ बत्तख ने अंगूर भी गेहूं के ढेर मे

डाल दिये हैं।'' वह अंगूर खाने को लपकी। तभी मोटा ताजा भालू गुर्राता हुआ ढेर से बाहर निकल कर बोला, ''मौसी, अंगूर खट्टे हैं।''

लोमड़ी के होश उड़ गये। खूंखार भालू के गुर्राने से उसकी तो जान निकलने लगी। वह दुम दबा कर जंगल की ओर भाग गयी और फिर कभी नहीं लौटी। बत्तख सारा गेहूं अपने घर ले गयी। किसी ने ठीक ही कहा है, 'धूर्त के प्रति धूर्तता बरतनी चाहिए।'

चक्रम का चक्कर

किसी गांव में विक्रम और चक्रम दो भाई रहते थे। दोनों भाइयों में अपने-अपने नाम के अनुरूप गुण थे। विक्रम बहुत सीधा-सादा था। वह कभी किसी से झगड़ता नहीं था, कमा कर खाता था। चक्रम कभी कमाता न था, और अपने बडे भाई की कमाई से आनन्द लेता था।

विक्रम ने गांव के मुल्ला के यहां नौकरी कर ली। वेतन बीस रुपये और खाने के लिए पत्ता भर खिचड़ी तय हुई। मुल्ला बड़ा चालाक था। उसने सोचा, 'इतना सस्ता नौकर और न मिलेगा। क्यों न उसे किसी ऐसी शर्त में फंसा लिया जाये कि वह सदा उसकी नौकरी करता रहे।' उसने विक्रम से कहा, "देखो भाई, नौकरी तो हमने दे दी, पर हमारी एक शर्त है।"

"क्या?" विक्रम ने पूछा।

"यदि तुम नौकरी छोड़ोगे तो हम तुम्हारे नाक-कान काट लेंगे और यदि हम तुम्हें निकालेंगे तो हमारे नाक-कान पर तुम्हारा अधिकार होगा।" मुल्ला ने शर्त बता दी।

"मंजूर है।" कह कर विक्रम ने बिना विचारे उसकी शर्त मान ली।

मुल्ला बहुत खुश था। विक्रम से दिन-भर खूब काम लेता और खाने के लिए केवल पत्ता भर खिचड़ी देता। बेचारे विक्रम को पीपल और बरगद के पत्तों से बड़ा पत्ता न मिलता। पत्ता दो चमचे खिचड़ी में भर जाता और वह भूखा रह जाता। कुछ ही दिनों में उसका स्वास्थ्य क्षीण होने लगा। आंखें गड्ढों में धुस गयीं। पसलियां चमकने लगीं। चलते हुए चक्कर आने लगे। फिर भी वह नाक-कान कटने के भय से नौकरी छोड़ने का नाम न लेता।

एक दिन उसका छोटा भाई चक्रम मुल्ला के मकान की ओर आ रहा था। रास्ते में उसने विक्रम को लड़कियों का भारी गट्ठर लिये देखा। विक्रम को पहले तो वह पहचान ही नहीं पाया, निकट आने पर पहचानते हुए वह बोला, "भाई विक्रम, बीमार हो क्या?"

दुर्दिनों में स्नेह पाकर आदमी रो पड़ता है। विक्रम ने गट्ठर एक ओर डाल दिया और भाई के गले से चिमट कर फूट-फूट कर रोने लगा। उसको रोता देख कर मस्त रहने वाला चक्रम भी खूब रोया। विक्रम ने मुल्ला की चालाकी की सारी कहानी सुना दी। चक्रम ने मन-ही-मन मुल्ला को उसकी करतूत का दंड देने का निश्चय किया। लकड़ी का गट्ठर अपने सिर पर रखते हुए वह बोला "भाई, घर जा कर आराम करो। मैं तुम्हारी जगह मुल्ला की नौकरी करूंगा।"

चक्रम गट्ठर लेकर मुल्ला के घर पहुंचा। मुल्ला ने त्योरी चढ़ा कर पूछा, "विक्रम कहां है?"

"गुस्सा न करो मुल्ला जी, मैं उसका छोटा भाई हूं। वह बीमार हो गया है। आज से मैं उसकी जगह नौकरी करूंगा। आपको चिन्ता करने की आवश्य कता नहीं।"

"तुम्हारे साथ भी नौकरी की वही शर्त होगी जो तुम्हारे भाई के साथ थी। स्वीकार है, बोलो।"

"मुझे वे सब शर्तें स्वीकार हैं।" चक्रम ने इत्मीनान से उत्तर दिया।

मुल्ला अब की बार पहले से अधिक प्रसन्न हुआ। चलो, एक मरियल आदमी से छुट्टी मिली। मोटा-ताजा चक्रम खूब काम करेगा। मुल्ला जी ने उसे आदेश दिया, "हुक्के में ताजा पानी डाल कर चिलम भर लाओ।"

चक्रम चिलम भरने चला गया। मुल्ला को शायरी का शौक था। वह अपनी तुक्कड़-कविताओं को दोस्तों को सुना कर आनन्द लिया करता था। उसने तुकबन्दी गुनगुनायी—

एक बुड्ढे से पीछा छूटा,
दूसरा मिल गया मोटा।

हुक्का सामने रख कर चक्रम ने दूसरा चरण पूरा किया—

समझा है जिसे खरा सिक्का,
वह है बिलकुल खोटा।
समझने में है अक्ल का टोटा।

"अरे वाह, तुम भी शायर हो! चलो, कभी-कभी शेरोशायरी हुआ करेगी।" मुल्ला ने प्रसन्न हो कर हुक्के में जोर से कश लगाया और खांसते खांसते उसकी आंखों में पानी आ गया। कुपित होकर वह बोला, "चक्रम, तम्बाकू रखा है चिलम में? धुआं तो उपले का है।"

"आपने डिब्बे से तम्बाकू लेने को कहा था। मैंने वही तम्बाकू चिलम में भरी है।" उसने संजीदगी से उत्तर दिया।

मुल्ला ने झल्ला कर डिब्बे की तम्बाकू देखी। उसमें कूटा हुआ उपला मिला था। मुल्ला चक्रम की मक्कारी समझ गया, पर कुछ कह न सका। उसने तम्बाकू कूड़ेदान में डाल दी और गावतकिये के सहारे बैठ कर कविता की तुक जोड़ने लगा। तभी बाहर बच्चों ने शोर मचाना शुरू कर दिया। गली में बच्चे खेल रहे थे। गुस्से में भर कर मुल्ला ने चक्रम को आदेश दिया, "देखो तो, कौन शोर मचा रहा है? सबको उठा कर पटक दो।"

चक्रम तो आदेश मिलने की प्रतीक्षा में था। बाहर जाकर उसने बच्चों को सिर से ऊंचा उठा-उठा कर पटकना आरम्भ कर दिया। बच्चों की चीख-पुकार सुन कर गली वाले लाठियां लेकर चक्रम को पीटने को दौड़ पड़े। हाथ जोड़ कर चक्रम बोला, "मेरा क्या कसूर है? मुल्लाजी ने बच्चों को पटकने का आदेश दिया था।"

सारे मुहल्ले वाले मुल्ला के मकान के किवाड़ पीटने लगे। मुल्ला बेचारा भय के मारे कांपने लगा। वह हाथ जोड़ कर लोगों से क्षमा मांगने लगा, "भाइयो, नौकर अभी नया है। गंवार है। भैंस-बुद्धि होने के कारण बात नहीं समझता। आगे से कभी शिकायत का मौका न मिलेगा।"

लोग शान्त होकर अपने घरों को लौट गये। मुल्ला ने चक्रम को बुला कर कहा, "देखो ऐसे काम न चलेगा। थोड़ा अक्ल से काम लिया करो।"

"बहुत अच्छा!" कह कर चक्रम मन-ही-मन हँसा, 'अक्ल से काम तो अब मुल्ला को लेना पड़ेगा!'

खाने के समय वह केले का पत्ता तोड़ लाया। केले का पत्ता देख कर मुल्ला की अक्ल चकरायी। पत्ते पर बटलोई की सारी खिचड़ी आ गयी और फिर भी पत्ता खाली रह गया। वह शिकायत-भरे स्वर में बोला, "देखो जी, पूरा पत्ता खिचड़ी मिलनी चाहिए। हमसे भूखे रह कर काम न होगा।"

"अच्छा भाई, अब तो इतनी ही खा लो। अगली बार पूरा पत्ता-भर खिचड़ी मिल जाया करेगी।" मुल्ला ने मरे मन से आश्वासन दिया। उस समय मुल्ला के परिवार को भूखा रहना पड़ा। मुल्ला बेचारा कुछ कह नहीं सकता था। पत्ता-भर खिचड़ी की शर्त उसने स्वयं रखी थी। मुकरता है तो शर्त टूटती है। इस प्रकार चक्रम दोनों समय कई आदमियों के खाने की खिचड़ी उन से लेने लगा। स्वयं खा कर शेष खिचड़ी अपने भाई विक्रम को दे आता। दोनों भाइयों की खाने

की चिन्ता मिट गया।

अगले दिन मुल्ला बोला, "भाई चक्रम, खेत जोत आओ। लौटते समय थोड़ा शिकार और आग जलाने के लिए लकड़ी लेते आना।"

चक्रम सवेरे हल-बैल ले कर खेत पर पहुंच गया। उसने चारों ओर से खेत जोत दिया। मुल्ला घोड़ी पर चढ़ कर खेत देखने आया तो हैरान रह गया। चारों ओर से खेत जुता था, किन्तु बीच में हल नहीं चलाया था। मुल्ला ने पूछा "खेत के बीच में हल क्यों नहीं चलाया?"

"आपने खेत जोतने को कहा था, सो जोत दिया। किनारे और बीच में हल चलाया जाये, यह तो आपने नहीं बताया था।" चक्रम ने भोला-सा उत्तर दिया। मुल्ला खीज कर लौट गया।

दोपहर को बैल, लकड़ी और शिकार लेकर वह घर पहुंचा। बैलों के कंधों पर हल न देख कर मुल्ला ने पूछा, "भाई, हल कहां छोड़ आये?"

"ये लकड़ियां जो देख रहे हैं, मैंने हल तोड़ कर बनायी हैं। जंगल में लकड़ियां मिली नहीं और खाना पकाने के लिए लकड़ियां लाना आवश्यक था।" चक्रम ने मासूम चेहरा बना कर कहा।

मुल्ला खून का घूंट पी कर रह गया। नाक-कटने के भय से वह उसे नौकरी से भी निकाल नहीं सकता था।

खाना तैयार हो गया। चक्रम अपना केले का पत्ता लेकर आ बैठा और एक बटलोई खिचड़ी लेकर खाने लगा। उधर मुल्ला और उसकी बीवी चटखारे लेकर गोश्त-रोटी खा रहे थे। खाना समाप्त कर मुल्ला ने अपने लाड़ले कुत्ते टामी को खाने के लिए पुकारा। टामी न आया तो बीवी से पूछा। बीवी ने बताया कि सवेरे वह चक्रम के साथ जंगल गया था। उसने चक्रम से पूछा, "टामी को कहां छोड़ आये भाई।"

"आपने शिकार मंगाया था। कोई जानवर न मिला तो मैंने सोचा, आप नाराज होंगे। बस, मैंने टामी को जिबह कर डाला।" चक्रम ने सफाई दी और मुल्ला पुनः सिर धुन कर रह गया।

अब तो चक्रम की चैन की बंसी बजने लगी। खूब खिचड़ी खाता और आराम से दिन-भर खर्राटे मारता। मुल्ला को काम बताने में बहुत सोचना पड़ता। चक्रम सभी काम उल्टे-सीधे करता था। मुल्ला ने नाक-कान जाने के भय से उसे कभी नौकरी छोड़ने के लिए नहीं कहा।

एक दिन मुल्ला ने उसे घोड़ी को तालाब में पानी पिलाने भेज दिया।

सोचा, पानी पिलाने में वह क्या गड़बड़ करेगा. तालाब को जाते हुए रास्ते में चक्रम को एक व्यापारी मिल गया। घोड़ी व्यापारी को पसन्द आ गयी। पांच सौ रुपये में घोड़ी बेचने का सौदा हो गया। पूंछ के बाल चक्रम ने काट लिये। व्यापारी घोड़ी लेकर चला गया। चक्रम ने पांच सौ के नोट जेब में रखे और पूंछ के बाल एक बिल में घुसा दिये।

मुल्ला घर पर उसके लौटने की घंटों प्रतीक्षा करता रहा। वह न लौटा तो माथा ठनका। वह स्वयं उसे और घोड़ी को ढूंढ़ने चल दिया। मुल्ला को आता देख कर चक्रम घोड़ी की पूंछ के बाल पकड़ कर बैठ गया। निकट आकर मुल्ला ने पूछा, "यह क्या कर रहे हो चक्रम?"

"मालिक घोड़ी बिदक कर इस बिल में घुस गयी है। मैं उसकी पूंछ पकड़े हूं। वह अन्दर को जोर लगाती है और मैं बाहर को खींच रहा हूं।" चक्रम ने पूंछ पर नकली जोर-आजमाइश दिखायी। बिना सोचे-समझे मुल्ला ने भी पूंछ जा पकड़ी। जोर लगाते ही सारे बाल बाहर खिंच आये।

"मालिक अब क्या होगा! पूंछ उखड़ आयी और घोड़ी बिल में चली गयी!" चक्रम ने रुआंसा होकर कहा।

मुल्ला की अक्ल ने काम करना शुरू कर दिया। वह समझ गया कि यह सब शरारत चक्रम की है। वह उदास चेहरा लिये घर लौट आया और चक्रम दौड़ कर पांच सौ रुपये विक्रम को दे आया।

कई दिन बीत गये। चक्रम भरपेट खिचड़ी खाता और मस्त रहता। मुल्ला उसके खाने और काम न करने से तंग रहने लगा। सोचता, इस बला को सिर से कैसे टाला जाये। नौकरी छोड़ने को कहता हूं तो नाक-कान कटवाने पडते है और काम करने को कहूं तो सब उल्टा कर डालता है। अपनेआप यह नौकरी क्यों छोड़े? मुफ्त में नाक-कान क्यों कटवाये? फिर चार-पांच किलो चावल-दाल रोज मुफ्त में मिल जाते हैं।

बहुत विचार करने पर मुल्ला ने निश्चय किया कि कोई ऐसा काम बताया जाये कि वह स्वयं नौकरी छोड़ कर भाग जाये। चक्रम को बुला कर उसने कहा, "देखो भाई, बरसात होने वाली है। बरसात में सूखी मिट्टी मिलना बहुत कठिन हो जाता है। तुम तालाब से सूखी मिट्टी खोद लाओ।"

"अच्छा!" कहकर चक्रम कुदाली और टोकरी लेकर तालाब से मिट्टी लेने चला गया और मुल्ला मसजिद में नमाज पढ़ने चला गया।

मिट्टी भरी पहली टोकरी लेकर चक्रम लौटा। उस समय मुल्ला की बीवी

आंगन लीप रही थी। वह टोकरी लिये खड़ा रहा। काफी देर बाद खड़ा रहने पर उसने पूछा, "मिट्टी कहां डालूं?"

"डाल दे मेरे सिर पर!" झल्ला कर मुल्ला की बीवी बोली।

बस, चक्रम को बहाना मिल गया। उसने मिट्टी की भरी टोकरी मुल्ला की बीवी के सिर पर पटक दी। मुल्ला की बीवी मूर्छित हो गयी। चक्रम ने उसे उठा कर चारपाई पर लिटा दिया और पंखा झलने लगा। थोड़ी देर में मुल्ला मसजिद से लौट कर आया। पत्नी को मूर्छित देख कर उसने पूछा, "चक्रम, बेगम को क्या हुआ है?"

चक्रम ने सारी घटना ज्यों-की-त्यों सुना दी। मुल्ला ने दोनों हाथों से सिर पीट लिया और कड़क कर कहा, "निकल जाओ यहां से! हमें नौकरी नहीं करानी!"

चक्रम तो पहले ही चाहता था कि मुल्ला शर्त हार जाये और स्वयं उसे नौकरी से निकाले। वह मुल्ला से डरा नहीं। बहुत विनम्र स्वर में बोला, "हमारी नाक-कान काटने की शर्त तय हुई थी। आपको अच्छी तरह याद होगी। नाक-कान मुझे दे दो, तो मैं चला जाता हूं!"

नाक-कान देने की बात सुन कर मुल्ला की अक्ल ठिकाने न रही। किन्तु अब वह इतना परेशान हो चुका था कि चक्रम को किसी भी प्रकार नौकरी से निकाल देने में अपनी कुशलता समझता था। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "भाई, मै शर्त हार गया। तुम मेरे नाक-कान ले सकते हो।"

चक्रम उसका गिड़गिड़ाना देख कर हँसा और बोला, "मुल्ला जी, मेरे भाई को सीधा समझ कर आपने उसे बहुत कष्ट पहुंचाया है। उसका दंड तो मिलना ही चाहिए था, किन्तु मैं आपको क्षमा करता हूं। नाक-कान काटने का अमानुषिक कार्य मैं नहीं करूंगा। भविष्य में किसी सज्जन आदमी को अपने जाल में न फंसाना, नहीं तो नाक-कान काट कर चिड़ियाघर का आदमी बना दूंगा। समझे!"

मुल्ला ने उसके पैर पकड़ कर क्षमा मांगी और भविष्य में किसी को न फंसाने का वचन दिया।

□□□